त्याग, तपस्या, शौर्य, पराक्रम तथा उदात्त
प्रेम की मनोरम कहानियाँ

रामेश्वर टाँटिया

इतिहास के निर्झर : राजस्थान, गुर्जर प्रदेश, महाराष्ट्र और बुन्देलखण्ड के उन वीरों की गाथायें हैं जो अपनी आन के लिए अपने प्राणों को कुछ नहीं समझते थे, जो लड़ाई में लड़ते हुए प्राण-विसर्जन करने के लिए तरसते रहते थे, जिनकी पत्नियाँ अपने पतियों के स्वर्गस्थ हो जाने पर सोलह-शृङ्गार करके हँसती हुई चिताओं में कूद पड़ती थीं।

त्याग, तपस्या, शौर्य, पराक्रम तथा उदात प्रेमकी ये कहानियाँ प्रत्येक युवा-युवती को ओज, स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करेंगी।

लेखक की अन्य कृतियाँ

विश्व यात्रा के संस्मरण
राह चलते चलते
कुछ देखी : कुछ सुनी
जाने अनजाने
आर्थिक समस्याएं
हमारा संसद भवन
कुछ अपनी, कुछ जग की
कुछ घटनाएं . कछ संस्मरण

इतिहास के निर्झर

रामेश्वर टांटिया

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

साकूत वाचा

●

श्रीरामेश्वरजी टाँटिया बड़े सहृदय सैलानी, भावुक पर्यटक और जिज्ञासु घुमक्कड़ हैं। अपने विस्तृत व्यवसाय की व्यस्त वात्या से उन्मुक्त होकर जब वे बाहर निकल पड़ते हैं तो सम्पूर्ण भू-प्रकृति, अपना समस्त भव्य वैभव, उनके जिज्ञासु मानस को गुदगुदाती चलती है, समग्र मानव-विभूति अपने समस्त भूत और वर्तमान प्रपंच के साथ अपनी मधुर और अमधुर गाथाएँ लेकर उनके मर्मस्थल को झकझोरने लगती है और व्यापक मानव-समाज अपनी विविधता के आडंबर में अपना कल्मष और अकल्मष लेकर उनकी बुद्धि को उद्वेलित करने लगता है। टाँटियाजी की दुर्बलता कहिए या उदारता, वे इस समस्त नैसर्गिक और मानवीय सृष्टि के कूट-अकूट अनुभवों को अपने हृदय में ही छिपाये रखने की कृपणता नहीं कर पाते। अपने अनुभवों में दूसरों को भी साझीदार बनाते चलने के लिए, अपने राग और विराग का रस दूसरों को भी देकर उन्हें भी विभावित कर डालने के लिए टाँटियाजी का हृदय कुलबुला उठता है, मचल उठता है, व्याकुल और व्यग्र हो उठता है और इस सात्विक आकुलता में वे पुस्तक के रूप में अपना समस्त संचित अनुभव समेट कर सबके मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, भाव-परिष्कार और मनस्तोष के लिए प्रकाशित कर डालते हैं।

इस संग्रह में संकलित कहानियाँ भी ऐसे ही पर्यटनों के अवसर पर अथवा व्यापक ऐतिहासिक अध्ययन के माध्यम से संप्राप्त अनुश्रुतियों, जनश्रुतियों अथवा ऐतिहासिक गाथाओं का ऐसा भूतिमय भांडार है जिसमें उन तेजस्वी पुरुषों और मनस्विनी महिलाओं की ज्वलंत गाथाएँ हैं जिनकी उपेक्षा इतिहास-लेखक करना चाहें तो भले ही करें, किंतु कृतज्ञ और भावुक जन-मानस जिन्हें भुला सकने की धृष्ठता और कृतघ्नता कभी नहीं कर पा सका। किसी सामान्य या विशेष अवसर पर, किसी सामान्य या विशेष व्यक्ति द्वारा सहसा कोई ऐसा अकल्पनीय कार्य हो जाता है कि युगों तक संसार भर का मानव-समाज आश्चर्य और श्रद्धा के साथ उसे सुनकर ही चकित रह जाता है कि क्या ऐसा भी संभव है ? किंतु हो जाता है यह सत्य है, और आगे आनेवाली सारी पीढ़ी परंपराक्रम से कथा के रूप में, कविता के रूप में, नाटक के रूप में उस

गाथा की आवृत्ति करता हुआ उसके द्वारा कृपण को उदार, कापुरुष को शूर और दुर्बल को पराक्रमी बनने की प्रेरणा देती रहती है ।

'सत्य तो कल्पना से कहीं अधिक विचित्र होता है', इसलिए स्वभावतः किसी अकल्पित मार्मिक घटना के लिए कोई निश्चित कारण नहीं बताये जा सकते कि केवल अमुक परिस्थिति में ही, केवल अमुक प्रकार का व्यक्ति ही, अमुक प्रकार का व्यवहार कर सकता है । सत्य तो यह है अकस्मात् किसी ऐसे क्षेत्र के, किसी ऐसे सामान्य व्यक्ति के द्वारा कोई ऐसा अद्भुत कार्य हो निकलता है कि सम्पूर्ण मानव-समाज उसके त्याग और बलिदान की, उसके शौर्य और आत्मोत्सर्ग की गाथा सुनकर ही श्रद्धावनत हो उठता है। हमारा यह देश तो त्याग और तपस्या की उस गोद में पला है जहाँ स्वार्थ का कोई महत्त्व रहा ही नहीं। शिवि, दधीचि, हरिश्चंद्र आदि ने वह साके कर दिखाये कि आज भी हमारा इतिहास उनकी अमर कहानी कह कर फूला नहीं समाता। किंतु राजस्थान, बुंदेलखंड, गुजरात और महाराष्ट्र ने तो इस युग में भी उन ज्वलंत गाथाओं को जिलाये रक्खा है जहाँ मृत्यु के भय ने न पुरुषों को कभी आतंकित किया, न महिलाओं को और न बालक-बालिकाओं को ही । कैसी वह वीर जाति थी जो अपनी आन के लिए अपने प्राणों को कुछ नहीं समझती थी, जहाँ के वीर-बाँकुरे लड़ाई में लड़ते हुए प्राण-विसर्जन करने के लिए तरसते रहते थे, जहाँ की महिलाएँ अपने पतियों के स्वर्गस्थ हो जाने पर सोलह श्रृंगार करके हँसती हुई चिताओं में कूद पड़ती थीं । टाँटियाजी ने राजस्थान, गुर्जर प्रदेश, महाराष्ट्र और बुंदेलखंड की ऐसी ही मर्मस्पर्शिणी गाथाओं का संकलन इस संग्रह में किया है । विस्मृत प्रेरक कालचक्र न तो मनुष्य की महत्ता को ही चिरजीवित रहने देता, न किसी घटना का वर्चस्व ही उसके चक्र से स्थिर रह पाता । इसलिए पुस्तक ही प्रारंभ से ऐसा साधन रहा है जिसके माध्यम से ऐसे महापुरुषों और सतियों की समुज्ज्वल गाथाओं को कालकवलित होने से बचाया रखा जा सकता है । टाँटियाजी ने वही लोक-कल्याण का मार्ग अपनाया है और इस प्रयास के लिए वे निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं ।

टाँटियाजी बहुश्रुत भी हैं, बहुपठ भी । उन्हें पुस्तकों से भी बहुत अधिक स्नेह है और सत्संग से भी । प्रायः सैलानी लोग नयन-सुख अधिक चाहते हैं और उसके साथ भोजन-सुख । ऐसे लोग अपने साथ कैमरा भी लिये रहते हैं और मनोरम दृश्य का चित्र संग्रह करके वे समझते हैं कि हमने यात्रा का फल पा लिया । किंतु वास्तविक पर्यटक वही है जो प्रत्येक नवीन स्थान, प्राचीन खंडहर, किसी देश के मानव-समाज के विषय में परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक होकर अपने कान भी खुले रखे, आतुर होकर उनके संबंध में प्रश्न भी करे और जान लेने पर विवेकपूर्वक उसकी वास्तविकता पर विचार भी करे । टाँटियाजी ऐसे ही जिज्ञासु पर्यटक हैं और इसीलिए इनकी कहानियों में वह जिज्ञासु-वृत्ति पग-पग पर प्रकट होती चलती है ।

टाँटियाजी की भाषा में किसी प्रकार की बनावट, मिलावट, दिखावट या सजावट नहीं है। वे अत्यंत सीधी, सरल और सर्वबोध्य भाषा में इस प्रकार अपनी बात समुपस्थित करते चलते हैं कि किसी दृश्य या घटना से जो मार्मिक प्रतिक्रिया उनके मस्तिष्क और हृदय पर हुई है उस प्रतिक्रिया से पाठक भी अछूता न बचा रह जाय। इसलिए ये कथाएँ अधिक सुगमता से वाचनीय और हृदयंगमनीय हो गई हैं।

मैं हृदय से टाँटियाजी के इस सत्प्रयास की सराहना करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि भारतीय समाज इन ओजस्विनी गाथाओं से विभावित होकर अपने चरित्र का विकास कर सकेगा। मैं आशा करता हूँ कि हमारे शिक्षा-विधायकगण ऐसी पुस्तकों को छात्रों के हाथ में देकर उन छात्रों के साथ-साथ देश का भी बहुत अधिक कल्याण करेंगे।

उत्तर बेनिया बाग,
काशी

सीताराम चतुर्वेदी

अनुक्रम

इतिहास के निर्झर

त्याग, तपस्या, शौर्य, पराक्रम,
तथा उदात्त प्रेम की
मनोरम कहानियां

शती का शाप

पिछले वर्ष सौराष्ट्र की यात्रा के समय वहाँ के ऐतिहासिक शहर और किसी समय की गुर्जर देश की राजधानो अन्हिलवाड़ पाटन भी गया।

आज से १०००-१२०० वर्ष पहले यह बहुत भव्य और बड़ा शहर रहा होगा। परन्तु इस समय तो टूटे-फूटे खण्डहर, कुछ पुराने मन्दिर और कुएँ-बावड़ी बच गये हैं। अधिकांश पाटनवासी रोजगार-धन्धे के लिए अहमदाबाद, सूरत और बड़ौदा की तरफ़ चले गये हैं, इसलिए अब यह एक छोटा-सा कस्बा मात्र रह गया है।

मुन्शी जी के 'पाटन के प्रभुत्व' और 'गुजरात के नाथ' के कोट्यधीश सेठ सज्जन मेहता और मुन्जाल मेहता के महल भी बड़े-बड़े भयावने खंडहरों में बदल गये हैं।

वहाँ पर जाने वाले पर्यटकों को एक विशाल तालाब अवश्य दिखाया जाता है। इसके चारों तरफ पक्का पुश्ता बँधा हुआ है। चार बड़ी-बड़ी कलात्मक मकराने पत्थरों की छतरियाँ हैं। घाटों की सीढ़ियाँ जैसलमेर के लाल-पीले पत्थरों से मढ़ी हुई हैं। यद्यपि वर्षा का मौसम था, परन्तु तालाब में पानी बिल्कुल नहीं था। कुछ गाय-भैंसें चारों तरफ घूम-फिर रही थीं।

मैंने गाइड को इसके बारे में पूछा तो वह कुछ उदासी-भरे लहजे में कहने लगा कि यही दिखाने के लिए तो मैं आपको यहाँ लाया हूँ।

इस तालाब के चारों तरफ दूर-दूर तक कँकरीला मैदान है, इसलिए वर्षा के दिनों में इसमें अथाह पानी आता है, परन्तु थोड़ी देर में ही सारा विलय हो जाता है। बड़े-बड़े इंजीनियरों ने इसकी जाँच की, पेंदे में बहुत-सी सीमेंट की ढलाई की, मजबूत पत्थर जड़े गये, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। हमारे यहाँ इसका नाम 'शापित तालाब' है। इसके पीछे एक ऐतिहासिक कथा है।

आज से ८५० वर्ष पहले गुजरात में प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह का राज्य था। वे अपने शौर्य और दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। मुंजाल मेहता जैसा प्रतापी उनका प्रधानमन्त्री तथा काकभट्ट जैसा प्रसिद्ध योद्धा उनका सेनापति था। एक से लेकर ग्यारह ध्वजा वाले वहाँ कई एक सेठ थे (एक ध्वजा एक करोड़ रुपये कीमत की थी)।

जब जयसिंह छोटा-सा बच्चा था, तभी उसके पिता कर्णदेव का देहान्त हो गया।

माता मीनल देवी अत्यन्त चतुर, विदुषी परन्तु दुर्धर्ष थी। उसके कड़े नियन्त्रण में रह कर जयसिंह अपने समय का प्रसिद्ध युद्ध-विशारद हुआ। गुजरात के नाथ के सिवाय उसे सिद्धराज भी कहा जाने लगा। पाटन की प्रभुता गुजरात के सिवाय अन्य दूसरे प्रान्तों में भी फैल गयी। कहा जाता है कि रुके हुए पानी का बाँध टूट जाता है तो फिर वह अत्यन्त वेग से बढ़ चलता है, किसी भी अवरोध-अटक की परवाह नहीं करता। कुछ ऐसा ही मीनलदेवी के देहान्त के बाद हुआ। सिद्धराज जयसिंह के रणवास में बहुत ही सुन्दर रानियाँ और दासियाँ थीं, परन्तु उसके मुसाहिब नित्य नयी सुन्दरियों की खोज में रहते थे। आयु के साथ-साथ राजा की कामलिप्सा बढ़ती जा रही थी।

जूनागढ़ का राजा रा-खेंगार उस समय का अद्भुत वीर था। उसका किला पश्चिम भारत में ही नहीं, बल्कि देश के इने-गिने किलों में से था। रानी का नाम था राणकदेवी, जो अपनी सुन्दरता और शालीनता के लिए देश भर में प्रसिद्ध थी, दूर-दूर के लोग उसका दर्शन करने के लिए जूनागढ़ आते थे।

जयसिंह उससे विवाह करना चाहता था, परन्तु वह हृदय से चाहती थी रा-खेंगार को। जयसिंह के कड़े अवरोध की बिना परवाह किये रा-खेंगार उसके साथ विवाह करके जूनागढ़ ले गया।

मन्त्रियों, सभासदों और सेनाध्यक्षों के विरोध के बावजूद जयसिंह ने एक बड़ी फौज लेकर जूनागढ़ के किले को घेर लिया। जब बहुत दिनों तक सफलता नहीं मिली और उसकी फौजें थकने लगीं; तो उसने वहाँ के किलेदार को मिलाकर किला फतह कर लिया। रा-खेंगार दूसरे साथियों के साथ बहादुरी से जूझता हुआ मारा गया। जिस समय जयसिंह राणकदेवी से मिलने के लिए किले में पहुँचा तो वहाँ महल के एक कोने में उस सती के जले हुए शरीर की राख की ढेरी मात्र थी। पैरों में महावर लगाकर और सोलह श्रृङ्गार करके सती अपने पति के सिर को गोद में लेकर भस्म हो गयी थी। उसके पैरों के निशानों को आज तक हजारों-लाखों सधवा और कुमारी कन्याएँ पूजती हैं। मैंने जूनागढ़ में राणक देवी का महल देखा और वह स्थान भी देखा जहाँ वह सती हुई थी। आज तक गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान में उसके नाम के गीत गाये जाते हैं।

कामी और क्रोधी की विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है। बौखलाया हुआ जयसिंह और भी ज्यादा क्रूर और कामुक हो गया। रात-दिन प्रजा की बहू-बेटियों को फुसला-धमका कर महल में बुलाने लगा। पाटन में उसने अपने नाम पर एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाना शुरू किया। हजारों मजदूर-मजदूरनी माटी खोदने और ढोने के काम में लगे थे। राजा बीच-बीच में स्वयं वहाँ चला जाता था। एक दिन उसने देखा कि दो-चार

मजदूर स्त्रियाँ मिट्टी की कठौती लिये हुए चुहल करती जा रही हैं। उनमें से एक अत्यन्त सुन्दरी पर उसकी नजर टिक गई। यद्यपि उसके महल में देश भर की चुनी हुई सुन्दरियाँ थीं जिन्हें नाना प्रकार के उबटन और शृंगार से ज्यादा मोहक बनाने के प्रयत्न होते रहते थे, परन्तु उस मिट्टी से सने चेहरे पर के पवित्र सौन्दर्य और कड़ी मेहनत से मँजे हुए सुडौल शरीर वाली गरीब युवती के वे सब पासंग में भी ठहरने लायक नहीं थीं। राजा ने पता लगाया कि उसका नाम जस्मो है, और उसका पति टिकू भी तालाब पर ही मजदूरी करता है। वे लोग दूसरे औड़ों (मिट्टी खोदने वालों की जा..) के साथ पश्चिमी राजस्थान से यहाँ आये हैं।

दूसरे दिन टिकू को बुलकार मजदूरों का सरदार बना दिया गया। मजदूरी २ पैसे प्रतिदिन की जगह १० पैसे मिलने लगी (उस समय १ पैसे में ५ सेर अनाज मिलता था)। काम भी केवल दूसरे मजदूरों की सम्हाल रखना ही था। रहने के लिए तालाब के पास ही एक अलग झोंपड़ा मिल गया।

राजा के मुसाहिब जस्सो के लिए कुछ न कुछ भेंट-सौगात लाने लगे।

वे बेचारे देहाती इन सब कुचालों को क्या समझते? उन्हें लगा कि परमात्मा ने उनके कष्ट के दिन दूर कर दिये। अब कमाई में से बचाकर कुछ देश में अपने वृद्ध माता-पिता को भेज सकेंगे।

एक दिन राजा के यहाँ से एक दासी आई और टिकू से कहने लगी कि महाराजा के महल में एक दासो की आवश्यकता है। जस्सो को वह काम मिल सकता है। १० पैसे रोजाना मेहनताना के सिवाय रोटी-कपड़े भी मिलेंगे।

टिकू तो राजी हो गया। सोचा बेचारी सारे दिन कड़ी मेहनत से थक जाती है। वहाँ आराम से रहेगी, परन्तु न जानें क्यों जस्सो के मन में कुछ अशुभ का सा आभास हुआ। उसने पति के पास रहकर मिट्टी ढोने का काम ही करना चाहा। पर भला पानी में रहकर मगरमच्छ से वैर कैसे निभता?

दो-तीन दिन बाद राजा के सिपाही टिकू और जस्सो को पकड़ कर महल में ले गये। पहले तो हर प्रकार से उन दोनों को अलग-अलग समझाया गया। नाना प्रकार के प्रलोभन दिये गये, परन्तु जब वे किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए तो राजा को क्रोध आ गया और टिकू को जस्सो के सामने खड़ा करके कोड़े मारने की आज्ञा दी। कोड़ों की मार से टिकू लहू-लुहान होकर बेहोशी में एक तरफ लुढ़क गया। मुँह से खून आता देखकर जस्सो ने समझा कि वह मर गया है।

घर से आते समय वह अपनी चोली में एक तेज कटार ले गई थी। उसे छाती में भोंकते हुए कहा—"हे दुष्ट और कामी राजा, यदि मैं मन, वचन और कर्म से पवित्र

हूँ तो तुझे शाप देती हूँ कि तेरे इस बड़े तालाव में एक घड़ा पानी भी नहीं ठहरेगा, चाहे कितनी ही वर्षा हो। लोग जव इस सुन्दर और बड़े तालाव को सूखा देखेंगे तो तेरे इस दुष्कर्म की याद करके युग-युग तक तुझे शाप देते रहेंगे। यही नहीं, तेरे इस बड़े राज्य को भोगने वाला वंशधर भी नहीं पैदा होगा।"

सती के दोनों शाप सत्य हुए। जयसिंह को पुत्र नहीं हुआ। उसका राज्य उसके प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र कुमारपाल को मिला।

●

गोगा-बापा

•

राजस्थान के शौर्य और वलिदानों का इतिहास विश्व में बेजोड़ माना जाता है। सम्मान और सतीत्व की रक्षा के लिए वच्चों को गोद में लिये हुए हजारों महिलाओं का धधकती आग में कूदकर प्राण दे देना, अपने-आपमें एक अद्वितीय दृष्टांत है। भारत के सिवा ऐसे उदाहरण शायद ही विश्व में और कहीं मिल पायेंगे। रणथंभौर और चित्तौर में इस प्रकार के कई जौहर हुए हैं। सबसे पहला जौहर बीकानेर के भादरा गाँव के पास गोगामढ़ी में सन् १०२४ में हुआ था। इसमें ७०० कुलवधुएँ अपने वच्चों को गोद में लिये हुए जलकर भस्म हो गयी थीं। जब गजनी की फौज मढ़ी में पहुँची तो उसे राख की ढेरी, कुछ अधजले मांस के लोथड़े और उन पर मंडराते हुए गिद्ध दिखाई दिये थे।

गोगामढ़ी के चौहान सरदार गोगाजी का अद्भुत इतिहास है। यूरोप के १२ वीं शताब्दी के क्रुसेड अभियान के कई एक नेता, भारत के जयमल, फत्ता और वीर चूड़ावत सरदार के वलिदानों से भी गोगाजी का वलिदान अधिक उज्ज्वल और अनोखा है।

मुहम्मद गजनवी की पचास हजार की सुसज्जित फौज के डर से लोहकोट (लाहौर) और मुलतान के हिन्दू राजा मुँह में तिनका लेकर अपनी फौज सहित उसके साथ हो गये थे। रास्ते के सामन्तों की विसात ही क्या थी? मरुभूमि की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते उसके पास तीस हजार सवार और पचास हजार पैदल फौज थी।

जहाँ तक सम्भव हुआ, मुहम्मद रास्ते के सामन्तों से समझौता करता हुआ, सोमनाथ की प्रसिद्ध मूर्ति ध्वंस करने के लिए आगे बढ़ रहा था। उसने गुर्जर देश की समृद्धि के वारे में सुन रखा था। वहाँ जाकर सिपाहियों को लूट का लालच था और गजनवी को महादेव की मूर्ति तोड़कर गाजी वनने का।

उसे भाटी प्रदेश (इस समय का बीकानेर क्षेत्र) होते हुए जालौर मारवाड़ के मार्ग से गुजरात सौराष्ट्र जाना था। रास्ते में गोगामढ़ी थी, वहाँ के वृद्ध सरदार गोगाजी की यशोगाथा उसने सुन रखी थी।

गजनवी ने एक देश-धर्मद्रोही तिलक नाम के भारतीय के साथ अपने सेनापति सालार मुहम्मद को गोगा-वापा के पास हीरे-जवाहरातों का थाल देकर भेजा। उसने

कहा कि अमीर गजनवी अपनी फौजों के साथ आपके क्षेत्र से होकर प्रभास-पाटन जा रहा है, उसे आपकी सहायता चाहिए।

नब्बे वर्ष के गोगा-वापा का शरीर क्रोध से काँपने लगा। गम्भीर गर्जन करते हुए उन्होंने कहा, "तेरा अमीर भगवान सोमनाथ के विग्रह को तोड़ने जा रहा है और मुझसे सहायता माँगता है! तू हिन्दू होकर उसकी हिमायत के लिए आया है!! जा, अपने मालिक से कह दे कि गोगा-वापा रास्ता नहीं देगा।" यह कहकर उन्होंने हीरे-मोतियों के थाल को ठोकर से दूर फेंक दिया।

वापा के इक्कीस पुत्र, चौहत्तर पौत्र और सवा सौ प्रपौत्र थे। इनके सिवा उनके पास नौ सौ शूरवीरों की छोटी-सी सेना थी। पन्द्रह दिनों तक तैयारी होती रही। गढ़ की मरम्मत हुई। हथियार सँवारे गये। चण्डी का और महारुद्र का पाठ होने लगा। एक दिन देखा कि गजनवी की फौजें एक विशाल अजगर की तरह सरकती हुई गोगामढ़ी से आगे निकल रही हैं। शायद वह वापा से उलझना नहीं चाहता था।

प्रधान पुजारी नन्दीदत्त ने कहा—"वापा संकट टल गया है—यवन फौजें आगे बढ़ती जा रही हैं। वापा की सफेद मूँछें और दाढ़ी फड़कने लगी।

उन्होंने कहा—"महाराज, हमारे शरीर में रक्त की एक बूँद के रहते भगवान शंकर के विध्वंस के लिए म्लेच्छ कैसे जा सकता है? हम लोग उनका पीछा करेंगे। आप गढ़ी में रहकर महिलाओं और वच्चों की सद्गति कर दें। ऐसा न हो कि उनके हाथों में मेरे वंश का कोई जीवित व्यक्ति पड़ जाय।"

युद्ध की तैयारी के बाजे बजे। घोड़े और ऊँट सजाये गये। केसरिया वाना पहने ११०० वीर हाथों में तलवार, तीर और फरसे लिये हुए गजनवी की सवा लाख फौज को विध्वंस करने चले।

दस वर्ष से छोटे वच्चों और स्त्रियों कि एक वड़ी चिता तैयार करके पुरोहित नन्ददत्त ने उसमें अग्नि प्रज्वलित कर दी। उसका अपना जवान पुत्र तो वापा के साथ जूझने चला गया था। पत्नी, पुत्र-वधू और बच्चे सब जौहर की आग में कूद गये।

गढ़ के नीचे खड़ी यवन सेना देख रही थी कि तीर की तरह तेजी से केसरिया वस्त्रों में थोड़े से वीर आ रहे हैं। 'अल्लाह हो अकबर' की गर्जना हुई। हरी पगड़ी और लाल दाढ़ीवाला अमीर हाथी पर चढ़ा हुआ अपनी फौजों को वढ़ावा देने लगा।

नब्बे वर्ष के वयोवृद्ध वापा बिजली की तरह कड़ककर यवन फौजों का नाश कर रहे थे। एक वार तो गजनवी की फौज में तहलका मच गया, परन्तु संख्या का और साज-सामान का इतना .अन्तर था कि दो घड़ी में सारे के सारे चौहान वीरगति को प्राप्त हो गये। दुश्मन के दसगुने आदमी मारे गये। गोगावापा के वंश में वच गया एक पौत्र सज्जन और उसका पुत्र सामन्त। वे दोनों मुहम्मद के आक्रमण की अग्रिम सूचना

देने प्रभास पाटन गये हुए थे। वापस आते समय उन्होंने रास्ते में भागते हुए लोगों से सारी बातें सुनीं। एक बार तो दुख से रोने लगे, परन्तु तुरन्त ही संभलकर अपना कर्तव्य निश्चित किया। सामन्त तेज ऊँटनी पर चढ़कर गुर्जर नरेश भीमदेव के पास चला गया।

सज्जन चौहान जालौर के रावल से मिलने गये। बहुत समझाने-बुझाने पर भी रावल नहीं माने। उन्होंने कुछ दिन पहले ही गजनवी के दूत को रास्ता देने की स्वीकृति दे दी थी। उनका कहना था कि गुर्जर नरेश भीमदेव इतना अभिमानी हो गया है कि हम लोगों को कुछ गिनता ही नहीं। अब जब उस पर संकट आया है तो मैं क्यों उसकी सहायता करूँ? सज्जन ने बहुत-कुछ समझाया कि 'महाराज, यह तो भीमदेव और आपके वैमनस्य का प्रश्न नहीं है। देश-धर्म पर संकट आया है! इस समय पारस्परिक भेदभाव को भूल कर यवनों का नाश करना चाहिए।' इस पर भी जब रावल नहीं माना तो व्यर्थ में देर न करके सज्जन ने अपनी ऊँटनी गजनवी की फौजों की तरफ बढ़ा दी। तीन-चार दिन तेजी से चलने पर उसे गजनवी का दूत अपने सैनिकों की टुकड़ी के साथ मिला। सात आदमियों सहित उसको मारकर रावल का स्वीकृति-पत्र, दूत की कटार और गुप्त निशान लेकर वह गजनवी की फौजों की तरफ बढ़ा। उस समय तक उसकी फौज में तीस हजार घुड़सवार, पचास हजार तीरंदाज और तीन सौ हाथी थे। चार हचार ऊँटों पर केवल रसद और पानी था। इसके पहले इतनी बड़ी फौज किसी भी सम्राट के पास नहीं सुनी गयी थी।

नायक को उसने निशान दिखाया। वह गजनवी के पास ले जाया गया।

एक बड़े तख्त पर अमीर बैठा था। चारों तरफ नंगी तलवारें लिये तातारी सिपाही खड़े थे। सज्जन ने दुभाषिये के माध्यम से बताया कि आपके दूत को रक्षकों सहित जालौर के रावल ने मार दिया है। रावल और मारवाड़ के राजा रणमल्ल की सम्मिलित फौजें लड़ाई के लिए तैयार हैं। निशानी के लिए दूत की कटार गजनवी के पैरों के पास रख दी। तीन-चार दिन के थके हुए और भूखे चौहान की बातों पर मुहम्मद को यकीन आ गया।

उसने अपना परिचय जैसेलमेर के एक जागीरदार के रूप में दिया और कहा कि अगर अमीर चाहें तो वह उन्हें सीधे रास्ते से केवल बीस-बाइस दिनों में सोमनाथ पहुँचा सकता है। उस रास्ते पर किसी प्रकार की रोक-थाम का अंदेशा भी नहीं है। इसके बदले में उसने अपनी जागीर के पास के एक सौ गाँव चाहे। इतनी अच्छी तरह से उसने रास्ते के गाँव और खेड़ों का परिचय दिया कि सेनापति तथा अन्य हलकारे उसकी बात को प्रामाणिक मान गये।

दूसरे दिन गजनवी ने अपनी फौजों को रास्ता बदलने का हुक्म दे दिया। अब वे सीधे कोलायत, बाप और जैसलमेर के रेगिस्तान होकर जाने लगे। सज्जन अपनी प्रिय

ऊँटनी पर सबके आगे चला। चार दिन की यात्रा के बाद हलकारों ने शोर मचाना शुरू किया कि आगे बीहड़ रेगिस्तान है जहाँ आदमी तो क्या पक्षी भी नहीं जा सकते। सेनापति सालार महमूद ने सज्जन को धमकाया, परन्तु वह अपनी बात पर अडिग रहा। वापस जाने में फिर पाँच दिन लगते, इसलिये हिम्मत करके वे आगे बढ़े। पाँचवें दिन दोपहर होते ही सामने भयानक अंधड़ आता हुआ दिखाई दिया। जलती हुई गरम रेत मुँह बाए हुए राक्षसी-सी बड़े वेग से बढ़ रही थी। चौहान की ऊँटनी जान की जोखिम लेकर तेजी से बढ़ने लगी। पीछे-पीछे मुहम्मद की सेना। थोड़ी देर में ही प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। गर्म रेत के उमड़ते हुए ढेर के ढेर पशुओं और मनुष्यों को अंधा बनाने लगे। फौज बेतहाशा पीछे लौटी, परन्तु प्रलयकारी तूफान की सी तेजी थके-मांदे पशुओं में कहाँ से आती? दसों हजार ऊँट-हाथी और सिपाही गरम रेत के नीचे दबकर मर गये। जो बचे, उनमें से बहुतों को रात में बिलों में से निकले हुए क्रुद्ध काले-पीले साँपों ने डस लिया। ऐसा लगता था कि शिव ने अपने गणों को यवनों की फौज का नाश करने के लिए भेजा है।

वीर चौहान ने भी अपनी ऊँटनी सहित वहीं मरु-समाधि ली। उसके चेहरे पर उल्लास और आनन्द था कि उसने दुश्मनों को इस प्रकार समाप्त कर दिया।

गोगा-बापा और उसके वंशजों की पुण्य कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। उनका यशोगान उत्तर भारत के हर व्यक्ति की जबान पर आज भी है। भाद्र मास में गोगा-मढ़ी में उनकी पुण्य-स्मृति में एक बड़ा मेला लगता है। मुहम्मद ने अपनी बची हुई सेना को सँभाल कर किस प्रकार जालौर-मारवाड़ के रास्ते से सोमनाथ पर हमला किया, यह कथा देश के इतिहास में प्रामाणिक रूप से उल्लिखित है।

●

अपूर्व त्याग

भीष्म की प्रतिज्ञा और त्याग सर्वविदित है। १५वीं शताब्दी की इसी प्रकार की एक ऐतिहासिक कथा है। मेवाड़ के राणाओं में सांगा, कुम्भा, प्रताप और राजसिंह का नाम वीरता और देशभक्ति में बड़े गौरव से लिया जाता है। उसी तरह राणा लाखा का नाम वीरता के साथ-साथ दानियों में लिया जाता है। अलाउद्दीन खिलजी के तोड़े हुए मन्दिरों का इन्होंने पुनर्निर्माण कराया, बहुत से नये मन्दिर, कुएँ और बावड़ियाँ बनवायीं। पिछोला झील इन्हीं के समय में बनी थी।

सन् १४१३ की बात है—लाखा को गद्दी पर बैठे ३० वर्ष हो चुके थे। वृद्ध हो गये थे, दाढ़ी मूँछें सफेद हो गयी थीं, चेहरे पर सलवटें पड़ गयी थीं। राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र चण्ड को सौंपकर पहाड़ों में तपस्या के लिए जाने का विचार कर रहे थे।

एक दिन सरदारों से घिरे हुए चित्तौड़ के किले के दरबार में बैठे थे। युवराज चण्ड अभी तक नहीं आया था।

उसी समय मारवाड़ का दूत आया और कहने लगा—महाराणाजी, मारवाड़पति महाराज रणमल ने अपनी प्रिय बहिन हंसा का युवराज चण्ड के साथ विवाह के अभिप्राय से नारियल भेजा है। कृपया स्वीकार करके मारवाड़ का गौरव बढ़ावें। राजकुमारी रूप और गुणों में सब प्रकार से युवराज के अनुरूप है।

महाराणा ने सारी बात ध्यान से सुनी फिर अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए हँसकर कहा कि क्या आपके महाराज हमारे जैसे वृद्धों पर यह कृपा नहीं करेंगे। जब इस प्रकार की हँसी-दिल्लगी हो रही थी, राजकुमार सभा में आया। राणा की कही हुई बात उन्होंने सुनी। इस परिहास की बात को सुनकर वह गम्भीर चिंता में हो गये। सोचने लगे कि मारवाड़ की राजकुमारी के लिए स्वयं महाराणा ने इच्छा व्यक्त कर दी, अब वह मेरी माता के तुल्य हो गयी है। भला अब मैं उसे अपनी पत्नी के रूप में कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।

राणाजी ने युवराज को बहुत प्रकार से समझाया, कहने लगे कि साधारण हँसी में कही हुई बात को तुम इतनी गम्भीरता से क्यों लेते हो। भला यह भी कोई अस्वीकृति का कारण है।

परन्तु चण्ड अपने निर्णय पर दृढ़ रहा। राणा ने क्रुद्ध होकर कहा कि आज तक

तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया, फिर आज क्यों इस प्रकार का हठ कर रहे हो। आज मारवाड़ हमारा मित्र राज्य है, परन्तु इस अपमान के वाद वे शत्रु हो जायेंगे। दोनों राज्यों में युद्ध होकर हजारों वीरों की मृत्यु अवश्यम्भावी है। पहले से ही तुगलकों की हमारे पर नजर है, फिर इस हालत में हम मारवाड़ से वैर कैसे ले सकेंगे। अगर मैं अपने लिए टीका मंजूर करता भी हूँ, तो मारवाड़-नरेश अपनी प्रिय बहिन का मुझ वृद्ध के साथ विवाह करके उसे क्या दुखी बनायेंगे ?

पिताजी मेरा निश्चय तो अटल है, अगर वे आपका रिश्ता मंजूर नहीं करते हैं तो मैं युद्ध करके उनकी बहिन को लाकर आपके चरणों पर गिरा दूँगा।

राणा उद्विग्न होकर कहने लगे—"अगर तुम इसी बात पर अड़े हुए तो तुम्हें यह राज्य भी त्याग करना होगा। मारवाड़ की राजकुमारी से जो पुत्र होगा, वही मेवाड़ का राणा होगा, बोलो यह मंजूर है ?"

"हाँ, महाराज मुझे मंजूर है।"

दूत ने मण्डावर जाकर सारी बातें रणमल से कहीं। १४ वर्ष की राजकुमारी हँसा का विवाह ६० वर्ष के वृद्ध राणा से हो गया। उन दिनों राजाओं में इस प्रकार बेमेल विवाह होते भी थे।

दूसरे वर्ष एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मोकल रखा गया। उसका लालन-पालन भविष्य के मेवाड़ के अधिपति की तरह होने लगा। मोकलजी पाँच वर्ष के हुए तब गया तीर्थ पर तुगलकों के आक्रमण की सूचना मिली। राणा लाखा ने कुमार चण्ड और सरदारों को अपनी चुनी हुई सेना के साथ इस धर्मयुद्ध में शामिल होने का निर्णय बताया। कहने लगे—तुर्कों की वड़ी सेना से हम एक प्रकार से केशरिया पहिनकर साका (मरने का निश्चय) करने जा रहे हैं। मुझे केवल एक ही चिन्ता है कि मेरे पीछे बालक मोकल का क्या होगा ?

राणा को भय था कि सरदार सब चण्ड की तरफ हैं, वह अपूर्व वीर है, शायद बालक मोकल को मारकर स्वयं गद्दी पर बैठ जायगा। प्रिय पत्नी हंसा की भी दुर्गति होगी।

चण्ड समझ गया कि महाराणा का इशारा उसकी तरफ था। उसने खड़े होकर कहा—"महाराज आप मोकल जी की चिन्ता न करें, वे मेवाड़ के महाराणा होंगे। हम सब उनके राज्य और मान के लिए जरूरत पड़ने पर जीवन की आहुति देंगे। अच्छा होगा, आपके सामने ही उन्हें राजतिलक कर दिया जाय।"

रांणा तो मन से यही चाहते थे। दो-चार दिनों में तिलक की रस्म बड़ी धूमधाम से हुई। सबसे पहले युवराज चण्ड ने राज्यभक्ति की शपथ खाकर बालक मोकल की अभ्यर्थना की। चण्ड के इस अद्भुत त्याग की पावन कथा आज भी राजस्थान में बड़े गर्व से कही जाती है। मेवाड़ राज्य का हरा बल उसी के वंशधरों के पास रहता है।

चित्तौड़ का तीसरा साका

सन् १९६४ में भारत के विभिन्न प्रदेशों के हम पचास संसद-सदस्य चित्तौड़ गये थे। वैसे तो सारा गढ़ ही अनूठा है, किन्तु सूरजपोल और किले का भीतरी आंगन विशेष रूप से पवित्र है, क्योंकि यहाँ तीन बार "जौहर" हुआ, इन्हें देखकर मन में एक सिहरन-सी हो उठती है।

केरल से हिमांचल प्रदेश तक के संसद-सदस्यों के हमारे दल में महिला सदस्याएँ भी थीं। राजस्थान सरकार ने सुचारु व्यवस्था कर दी थी। प्रदेश के पर्यटन विभाग के मंत्री के अतिरिक्त स्थानीय अधिकारी एवं सुदक्ष गाइड भी साथ थे।

चित्तौड़गढ़ अपने आपमें गौरवमय इतिहास की परतों को समेटे हुए हैं। सूरज-पोल उसका मुख्य दरवाजा है। पिछले आठ सौ वर्षों में इसने बहुत सी लड़ाइयाँ और तीन प्रसिद्ध "साका" देखे। "परिचय-पत्रिका'. 'हमें पहले से दे दी गयी थी, फिर भी गाइडों ने जो कुछ भी बताया, वह काफ़ी लोमहर्षक रहा।

मेवाड़ के इतिहास में प्रतापी प्रताप का शौर्य स्वर्णाक्षरों में रहेगा। आश्चर्य है कि राणा उदय सिंह जैसे विलासी और भीरू को प्रताप सा सिंहपुरुष पुत्र के रूप में प्राप्त हुआ। शायद राणा सांगा की आत्मा इसे सहन न कर सकी और सिसौदियों की आन अक्षुण्ण रखने के लिए उन्हें प्रताप बन फिर से आना पड़ा।

सन् १५४० में उदयसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे। दिल्लीश्वर हुमायूँ उन दिनों दर-दर की ठोकरें खा रहे थे। राजस्थान इसीलिए मुग़ल आक्रमण से बचा था। उदयसिंह निश्चिन्त थे, भोग-विलास में भरपूर डूबे हुए।

पानीपत की दूसरी लड़ाई में अकबर ने हेमू को पराजित किया। महत्वाकांक्षी अकबर राज्य-विस्तार में योजनाबद्ध रूप से लग गया। युद्ध और कूटनीति की दुधारी तलवार से वह सफलता की सीढ़ियों को तय करता गया। आमेर के राजा भारमल की कन्या जोधाबाई से विवाह कर राजपूतों के एक बड़े वर्ग की सहानुभूति उसे मिली। बाप्पा रावल के वंशज महाराणा उदयसिंह ने समय के संकेत को पहचानने की कोशिश नहीं की। सन् १५६७ तक अकबर ने संपूर्ण राजस्थान पर विजय प्राप्त कर ली, केवल चित्तौड़ बच रहा। अकबर मेवाड़ी तलवार के पानी को समझता था। उसने तैयारियाँ

शुरू कर दीं और स्वयं एक बड़ी फौज लेकर चित्तौड़ पर चढ़ आया। उसकी सेना में तुर्क पठानों के अलावा बहुत बड़ी संख्या में देशद्रोही राजपूत भी थे।

मेवाड़ी सामन्तों ने महाराणा को सलाह दी कि शाही फौज का मुकावला उनके नेतृत्व में किया जाय। चित्तोड़ की यही परम्परा रही है। किन्तु सब व्यर्थ गया। उदय सिंह चुपचाप अपने रनिवास के साथ दूर अरावली की पहाड़ियों में जा छिपे। मेवाड़ के लिए यह पहला अवसर था कि उसका नेता ही भाग खड़ा हुआ।

स्वदेश-भक्त राजपूत वीरों ने निर्णय लिया कि वे भागेंगे नहीं; वल्कि मुग़लों का मुकावला डटकर करेंगे। आसपास के सामन्त और सरदार अपनी-अपनी फौज की टुकड़ियों को लेकर चित्तौड़गढ़ में आ गये। अकवर की अपार सेना के सामने मुट्ठी भर राजपूत! मृत्यु का साक्षात् वरण ही कहा जायगा। इतिहास में ऐसे उदाहरण यूरोप के पूर्वमध्यकालीन क्रूसेड (धर्मयुद्ध) के ही मिलते हैं जिनमें अपने देश, धर्म एवं तीर्थ की रक्षा करने के लिए ईसाइयों ने जान-बूझकर मुस्लिम अत्याचारियों से वीरतापूर्वक जूझते हुए मौत को गले लगाया था।

चित्तौड़ के इस युद्ध में जूझने वाले सभी राजपूतों की वीरता अद्भुत थी। शायद ही कोई वीर बचा। इसे चित्तौड़ का तीसरा "साका" कहा जाता है। विदनौर के सरदार जयमल और बेलवाड़ा के किशोर सरदार पत्ता ने आक्रमणकारियों के छक्के छुड़ा दिये। बहुत दिनों तक घेरा डालने पर भी अकवर जब गढ़ में प्रवेश नहीं कर पाया तो उसने अपनी सेना के मुख्य भाग को गढ़ के प्रमुख द्वार सूरजपोल पर भीषण आक्रमण करने का आदेश दिया। यहाँ चन्द्रावत सरदार साहीदास अपनें साथियों की एक छोटी-सी टुकड़ी के साथ रक्षा का दायित्व सम्हाले था। मुग़ल सेना ने जवर्दस्त हमला वोल दिया। साहीदास के गिने-चुने साथी कब तक टिकते। एक-एक कर सभी वीरगति को प्राप्त हुए। फिर भी मुग़ल दुर्ग में प्रवेश नहीं कर पाये।

इसी तरह भदारिया का रावत दूदा बेदला; कोटरी और विर्जाली के सरदार तथा सादड़ी के झाला—सब अपने साथियों के साथ जूझते हुए वलिदान हो गये। ऐसे संकट के समय चूड़ावत रानी ने अपने किशोर पुत्र पत्ता और पुत्रवधू के साथ वीरवेश में दुर्ग-द्वार की रक्षा का भार सम्भाला। दोनों वीरांगनायें कवच पहने हाथों में नंगी तलवार लिये डट गयीं। मौत सामने मुस्कुरा रही थी किन्तु रानी एक मात्र पुत्र को रणसंचालन के लिए प्रोत्साहित करती रही। उसके साथ ही अपना जीवन उत्सर्ग करना चाहती थी, न कि जौहर की ज्वाला में। रानी के युद्ध कौशल को देखकर शत्रु भी चकित रह गये। रणचण्डी की तरह जिधर जाती, नरमुण्ड कट-कट कर गिरते। शत्रुदल लहरों की तरह बढ़ता जाता था। पत्ता अपनी माता और पत्नी के साथ लहरों से खेलता हुआ इन्हीं में समा गया।

रात्रि का समय था और घोर अंधेरा। जयमल दुर्ग के प्राचीरों में टूटे-ढहे स्थान की मरम्मत रोशनी में करा रहा था। किले पर उसने आग, पत्थर और गोले बरसा कर मुग़ल सेना पर कहर ढा दिया था। अकबर की तोपों ने जगह-जगह दीवार में गड्ढे कर दिये थे। कई बार तो उसने कोशिश की कि सुरंग लगाकर फाटक और दीवार उड़ा दिये जायँ, किन्तु असफल रहा। मुग़ल सेना मेवाड़ी वीरों की बहादुरी देखकर हैरान थी। वे यही ताज्जुब कर रहे थे कि मुकाबले में इन्सान लड़ रहे हैं या ज़िन्नात।

उस रात युवक अकबर भी चिन्तित मन से किले की दीवारों का मुआइना कर जानना चाहता था कि अगले दिन किस भाग पर चोट की जाय। मशाल की रोशनी में जयमल दिखाई पड़ा। अकबर अचूक निशानेबाज़ था। उसने अपनी "संग्राम" बंदूक उठायी और जयमल पर निशाना दाग दिया। गोली जांघ में जा धँसी, वह बुरी तरह घायल हो गया। मशालें बुझा दी गयीं। अंधेरे में कहाँ, क्या हुआ—कुछ पता नहीं चला।

सवेरा हुआ। घमासान युद्ध छिड़ा। मुग़लों में जोश था कि जयमल बादशाह की गोली का शिकार हुआ। किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह एक राजपूत के कन्धे पर चढ़ा दोनों हाथों से तलवार चलाता उनकी सेना को काटता हुआ चला जा रहा है तो दंग रह गये। अकबर के मुँह से निकला, काश। "मेरे साथ भी कोई ऐसा बहादुर होता।"

सूरजपोल आखिर टूटा। मुग़ल सेना टिड्डी की तरह फाटक के भीतर पिल पड़ी। बाजी जाती देखकर भी राजपूत हिम्मत हारे नहीं। बचे हुए मेवाड़ी वीर केस-रिया बाना पहन शत्रुसेना से जूझते हुए मर मिटे। महिलाएँ बच्चों के साथ जौहर की ज्वाला में कूदकर सती हो गयीं।

किले के आँगन में अब भी आग जल रही थी। धुआँ और गर्द का गुबार उठ रहा था। अकबर ने देखा जयमल की मुट्ठियों में तलवार कसी है, जांघ से खून बह रहा है, अधखुली आँखों में चिर शांति। वह देखता ही रह गया। सोचने लगा कि इस जीत में भी शायद मेरी हार है। मौत का चिराचंध गंध आँगन में बच्चों और महिलाओं की जली-अधजली लाशें और राख के ढेर। वह चुपचाप एक ओर हट गया।

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर राजपूतों के इस "साका" को भूला नहीं। जयमल और पत्ता उसके दिल-दिमाग में जम चुके थे। आगरे जाकर उसने अपने किले के मुख्य द्वार पर इन दो वीरों की हाथी पर सवार मूर्तियाँ स्थापित कर दीं। शाहजहाँ के समय तक ये वहाँ रहीं। बाद में सन् १६६३ में औरंगजेब ने इन्हें हटवा दिया।

तीन सौ वर्ष बाद भी उस दिन हमने उस किले के आंगन में ईटों के बीच भस्मी चिपकी देखी। हममें से कइयों ने उन्हें खुरच कर माथे से लगाया। महिलाओं ने कुछ अंश रूमाल में बाँधे, शायद घर जाकर बच्चों के मस्तक पर लगायें। शाम हो आयी। सूर्य किले की दीवारों के पीछे चला गया था। हम भारी मन से अपने शिविर की ओर चले आये। ●

प्यार की समाधि

●

बादशाह अकबर एक शाम को अपने दीवान-ए-खास में मुसाहिबों से घिरा हुआ गमग़ीन बैठा था। किसी की हिम्मत बात करने की नहीं हो रही थी। दूसरे लोगों के चले जाने पर बीरबल ने पूछा—"हुजूर क्या कारण है कि आप आज उदास-से लग रहे हैं ?"

लम्बी साँस लेते हुए बादशाह ने कहा कि "कल मालवा से जो दूत आया है, वह कह रहा था कि मांडू का युवक सुल्तान बाजबहादुर अद्‌भुत वीर और अचूक निशानेबाज है, विद्वान और संगीतज्ञ है। उसके दरबार में बहुत से शायर और कलाविद् रहते हैं। हमारे दूत ने यह भी कहा है कि उसकी नयी रानी रूपमती अपने समय की सर्वगुणसम्पन्न और खूबसूरत है। चित्तौड़ की पद्‌मिनी के रूप की कहानी रूपमती के रूप के सामने फीकी हो गयी है। हम इतनी बड़ी सल्तनत के बादशाह हैं; परन्तु हमारे हरम में ऐसी सुन्दरी आज तक नहीं आयी।"

बीरबल ने कहा—"हुजूर, बन्दे की गुस्ताखी माफ हो। बात यह है कि आप औरतों को हमेशा पैर की जूती समझते रहे हैं, जब चाहा काम में लिया फिर सड़क पर फेंक दिया, जबकि सुल्तान बाजबहादुर उनकी इज्जत करता है। रूपमती को उसने बड़ी तपस्या के बाद पाया है। कई बार भेष बदलकर उसके गाँव सारंगपुर जाता रहा, वहाँ रेवाशंकर के मन्दिर में तन्मय होकर उसके भजन सुनता रहा। दो-एक बार तो रूपमती ने उसे दुत्कार भी दिया परन्तु सुल्तान ने धैर्य नहीं खोया।"

रूपमती और बाजबहादुर के मिलन की भी एक अनोखी घटना है। एक शाम को शिकार में भटकता हुआ वह सारंगपुर में रेवाशंकर के मन्दिर के पास जा पहुँचा। वहाँ संगीत की अद्‌भुत तान आ रही थी। स्वयं कलाविद् तो था ही, वह भी सुर में सुर मिलाकर गाने लगा। भजन गायिका तन्मय होकर उसके आलाप "अँखिया हरिदर्शन की प्यासी, प्रभु मिलन की प्यासी" सुनती रही।

आखिर एक दिन किशोरी ने पूछा—"युवक तुम कौन हो ? हमारे गाँव के तो नहीं हो, फिर हमारी गढ़ी के मन्दिर में बार-बार क्यों आते हो ? अगर मेरे पिताजी को पता चल जायगा तो तुम्हारी जान की खैर नहीं है।"

"सुन्दरी, मैं एक भटका हुआ इन्सान हूँ, यद्यपि मैं मुसलमान हूँ परन्तु हिन्दू-मुस्लिम दोनों मजहबों का आदर करता हूँ। तुम्हारा यह भजन जब से सुना है, मेरे

पैर अपने-आप मुझको यहाँ ले आते हैं। ठाकुर साहब के गुस्से के बारे में मैंने सुन रखा है, परन्तु प्रेम चाहे संगीत के प्रति हो, चाहे संगीतज्ञा के प्रति, वह रोक नहीं मानता। न चाहते हुए भी खतरा उठा लेता है। परवाने को यह परवाह नहीं रहती कि वह शमा के पास जाकर जल-भुन जायगा।"

रूपमती ने अपने साथ की युवती से कहा कि अजीब वहशी से पाला पड़ा है। इसे न पिताजी का डर है, न अपने मजहबी मौलवियों का। यहाँ मन्दिर में बैठकर भजन गाता रहता है।

इसके बाद युवक को एक प्रकार से छूट मिल गयी। वह नित्य प्रति नया भजन बनाकर मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठकर गाने लगा।

एक बार कई दिनों तक वह युवक नहीं आया। रूपमती मन्दिर में उसकी प्रतीक्षा करती रही। पता-ठिकाना नहीं जानती थी, वर्ना किसी को बुलाने के लिए भेजती।

एक शाम को उसके पिता घायल अवस्था में गढ़ी में आये। संयोग से साथ में वही युवक था।

कहने लगे—"बेटी आज इस युवक की बहादुरी के कारण तुम मुझे जिन्दा देख रही हो, वर्ना मैं अब तक बाघ के पेट में जा चुका होता। इसने एक प्रकार से बिना हथियार के ही उस नरभक्षी को मार गिराया। मेहमान हारा-थका है, इसकी अच्छी तरह से खातिरदारी करो।"

ठाकुर को परिचर्या के लिए वैद्य-हकीमों ने घेर लिया। रूप और युवक को बात करने के लिए एकान्त मिल गया।

ऐसे में शिकवा-शिकायत तो होता ही है, परन्तु सुलतान भला उस भोली किशोरी को कैसे समझाता कि वह सियासी मामलों में उलझ गया था। बादशाह अकबर के दूत दो-तीन बार आकर धमकी दे गये थे कि वह आगरे के मातहत मालवे की सूबेदारी मंजूर कर लें, वर्ना मुगलिया फौज उसको नेश्त-नाबूद कर देगी।

तीन-चार दिन बाद युवक फिर सारंगपुर आया। साथ में प्रसिद्ध संगीतज्ञ रामचन्द्रजी थे। उन्होंने कहा—"ठाकुर साहब, आपकी पुत्री की बड़ाई हुजूर सुलतान के यहाँ पहुँची है। वे उसे अपनी महारानी बनाना चाहते हैं, उसका दर्जा दूसरी सब बेग़मों से ऊँचा रहेगा। सुलतान की दरियादिली तथा बहादुरी के बारे में तो आप जानते ही हैं, वैसे भी आपकी तीन पीढ़ी उनके बुजुर्गों के मातहत रहती आयी है। आपकी पुत्री को अपना धर्म नहीं बदलना होगा, उसकी पूजा-पाठ के लिए वहीं मांडू में भगवान रेवाशंकर का मन्दिर बना दिया जायगा।"

उस समय तक कई-एक राजपूत लड़कियों का विवाह मुसल्मान नवाबों और शाहजादों से हो चुका था। आमेर के राजा बिहारीमल की पुत्री जोधा बाई बादशाह अकबर की बड़ी बेग़म थी।

यद्यपि ठाकुर के लिए यह रिश्ता बहुत ऊँचा था। सुलतान के गुणों के बारे में भी वह जानता था, परन्तु फिर भी मन में ऊहापोह तो थी ही।

कहने लगा—"यद्यपि हम साधारण जागीरदार हैं और सुलतान मांडू जैसी बड़ी सल्तनत का मालिक है फिर भी हम आमेर की तरह डोला नहीं भेजते। यदि सुलतान को मेरी रूप से विवाह करना हो तो उन्हें स्वयं आकर याचना करनी होगी, हमारे यहाँ की यही रीति है। मुझे रूप की भी सम्मति लेनी होगी, यदि वह राजी नहीं होगी तो रिश्ता नहीं होगा, चाहे जो अंजाम हो।"

युवक ने आदाब करते हुए कहा—"वा साहब, स्वयं बाजबहादुर ही आपके पास याचना के लिए आया है। आपकी मर्जी है बख्शें या इन्कार कर दें। रूप हिन्दू है—सदा हिन्दू रहेगी। यही नहीं, अगर आपका जिद्द हो तो मैं खुद मजहब बदल कर हिन्दू हो जाऊँगा। मगर उस हालत में मेरी फौजों में बलवा हो जायगा, मालवा सल्तनत खत्म हो जायगी। आप रूप से पूछ लें, उसकी रजामंदी से ही रिश्ता होगा, नहीं तो हम वापस चले जायेंगे, किसी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती का तो सवाल ही नहीं है।"

पास के कमरे में बैठी रूपमती सारी बातें सुन रही थी। ठाकुर जब उससे पूछने गये तो गले से लगाकर फफक कर रोने लगी। पिता, पुत्री की मंशा समझ गये। रिश्ता मंजूर कर लिया।

बहुत धूमधाम से रूपमती का विवाह मांडू के सुल्तान के साथ हिन्दू-रीति से हो गया।

मांडू के बड़े सरोवर के किनारे भगवान शंकर का सुन्दर मन्दिर बना और महारानी के रहने के लिए कलापूर्ण विशाल गगनचुम्बी महल।

दोनों प्रेमियों के दिन प्यार और आराम के साथ गुजरने लगे। रानी राजकाज में भी सलाह देती रहती, शिकार में तो हमेशा साथ रहती ही। वह स्वयं अच्छी शिकारी थी। मन्दिर में रोज पूजा करने जाती, तो कभी-कदाच मस्जिद में भी जाती रहती। वहाँ फ़क़ीरों और भिखारियों को खुले हाथ से दान देती। हिन्दू-मुसलमान दोनों उसकी इज्जत करते थे। सुल्तान राजकाज भूलकर रात-दिन उसके महल में रहने लगा। रानी आगाह करती कि राजा का पहला कर्तव्य है अपने राज्य की देखरेख करना, उसके बाद दूसरी बातें।

इधर अम्मा माहम अंगा ने रूपमती के रूप और गुणों का बखान करके बादशाह को मांडू पर चढ़ाई करने को तैयार कर लिया। अकबर इसके पहले चित्तौड़ से निपट लेना चाहता था, परन्तु मांडू की नयी महारानी को अपने हरम में लाने की उस कामुक के मन में तीव्र लालसा जाग उठी।

आगरे का दूत खत लेकर मांडू पहुँचा। इस बार मालवा के साथ रूपमती की भी

माँग की गयी थी। सोचने के लिए दो दिनों का समय दिया गया था। आगरे के मात-हत मालवे की सूबेदारी बाजबहादुर को देने को लिखा था।

खत की इबादत सुनकर सुलतान का चेहरा गुस्से से लाल हो गया—वज़ीर और सेनापति की तरफ़ देखने लगे। वृद्ध वज़ीर उनके पिता के समय का था, बहुत ऊँची-नीची देख चुका था। आनेवाले खतरे से वाकिफ़ था। कहने लगा—"हुजूर मुगलिया सल्तनत काबुल से लेकर ग्वालियर तक फैली हुई है। बेइन्तहा ताकत है उनके पास। हमारे पन्द्रह हजार सैनिक यद्यपि बहादुरी में किसी से कम नहीं हैं, फिर भी मुगलों की सवा लाख फौज से केवल तीर-कमान और तलवारों से कैसे लड़ सकेंगे, जबकि उनके पास बड़ी-बड़ी तोपें और बेहतरीन बन्दूकें हैं। परन्तु आप महारानी को पूछ लें, खत में एक शर्त उनके लिए भी है।"

रानी बोली—"मेरे सरताज, अगर मेरी माँग होती तो मैं जहर खाकर अपने को खत्म कर लेती, परन्तु यहाँ तो आपको सुल्तान मिटाकर सूबेदार बनाने की भी माँग की है। वैसे मालवा और मैं दोनों आपके हैं, जो चाहें सो करें। दूसरे दिन दूतों के सामने खत को जला दिया गया, उन्हें सही सलामत सरहद पर छोड़ दिया।

आगरे में मालवा पर चढ़ायी की तैयारी होने लगी। उस बड़ी फौज का आला सेनापति बनाया गया माहम अंगा के नालायक और ऐय्याश बेटे आदम खाँ को। वह राजधानी की मौज-शौक छोड़कर मालवी वीरों से लड़ने का खतरा मोल लेना नहीं चाहता था, परन्तु अंगा ने जब रूपकुमारी की सुंदरता का बयान किया तो राजी हो गया।

बादशाह आदमखाँ की कमजोरी जानता था, इसलिए अपने विश्वस्त सेनापति पीर मोहम्मद को उसके साथ भेजा और पोशीदा तौर पर हिदायत कर दी कि बाइज्जत महारानी को आगरे लाया जाय।

मुग़लों की बड़ी फौज में सैकड़ों हाथी, हजारों घोड़े, बीसियों बड़ी तोपें तथा ४० हजार सिपाही थे। इधर मालवा की सेना की कुल संख्या पन्द्रह हजार थी। मालवी, पठान और हिन्दू दोनों जी-जान से लड़े। तीन दिनों तक दुश्मनों के हजारों आदमियों को मौत के घाट उतार दिया। घायल हो जाने के बावजूद खुद सुल्तान चारों तरफ घूम-घूमकर अपने थके माँदे सिपाहियों को धीरज बँधाता रहा। परन्तु दुश्मनों की फौज संख्या में तिगुनी थी, बेहतरीन शस्त्रों से लैस थी, नयी कुमुक पहुँचती जा रही थी। अन्त में सारे मालवी वीर मारे गये या घायल हो गये। माँडू के किले पर आदमखाँ का कब्जा हो गया। सुलतान सारंगपुर में लड़ रहा था। इधर किले की रक्षा का भार रूपमती पर था। वह घायल अवस्था में दुश्मनों द्वारा गिरफ्तार कर ली गयी।

कुछ दिनों बाद जब महारानी की बेहोशी मिटी तो उसने अपने को महल के एक सजे हुए कक्ष में पाया। इर्द-गिर्द तीन-चार अजनबी आदमी बैठे थे। उनमें से एक ने

कहा—हकीम साहब, हमारी प्यारी मलका को तन्दुरुस्त होने में कितने दिन और लगेंगे। इनके बिना हमें करार नहीं है।

पास के दूसरे आदमी ने कहा कि जनाब आदम खाँ, यह आप क्या कह रहे हैं ? यह बादशाह सल्तनत की अमानत हैं। मुझे शाहंशाह का हुक्म है कि इन्हें बाइज्जत उनके हरम में पहुँचा दिया जाय।

मुल्ला पीर मोहम्मद ! तुम्हें अपनी औकात समझकर बात करनी चाहिये। आखिर यहाँ तुम हमारे मातहत हो। फौज के सिपहसालार हम हैं। यहाँ की दौलत पर और हूरों पर पहला हक़ हमारा है।" आदमखाँ ने कहा।

रूपमती फिर बेहोश हो गयी। वे सब चले गये। दूसरे दिन सुलतान की बड़ी बेगम खुलाजान उसके पास आयी। वह रूपमती से पहले सुलतान की सबसे चहेती बेग़म थी। कहने लगी—"बहिन अब जिद्द करने से कोई फायदा नहीं है। सुलतान पिछले पाँच दिनों से गायब है। पता नहीं; जिन्दा है या मर गये। हमारे ज्यादातर फौजी मारे गये या कैद हो गये हैं। मेरी राय में तुम्हें भी मुगलों के आला सेनापति आदम खाँ की बात मान लेनी चाहिये। फिर हम दोनों साथ रहकर हँसी-खुशी में वक्त गुजार देंगी, जो बीत गया उसे भुला देना चाहिए।

खुला बेगम—"यह मैं क्या सुन रही हूँ जिनके साथ जिन्दगी के बेहतरीन दिन गुजारे, जिनको हम तन-मन का मालिक समझती रही—आज बुरा वक्त आने पर उनको धोखा देकर दुश्मन के हरम में दाखिल होने को तुम कह रही हो। यह जिस्म मिट्टी से बना है—एक दिन मिट्टी में मिल जायगा, फिर थोड़े दिनों के आराम के लिए इतनी बेइज्जत और छिछलेदारी किसलिए है ?"

रूपमती जब स्वस्थ होकर चलने-फिरने लगी तो एक दिन रेवाशंकर के मन्दिर में गयी—देखा मूर्ति नदारद है—मन्दिर टूट चुका है, उसकी जगह मस्जिद बन गयी है। फिर भी भगवान को सर्वव्यापी समझकर अपना पुराना भजन "अखियाँ हरि दर्शन की प्यासी" गाने लगी, जिसे बहुत वर्षों पहले युवक सुलतान के साथ सारंगपुर के मंदिर में गाती थी।

दूसरे दिन रानी रूपमती ने सेनापति आदमखाँ को अपने महल में बुलाया था। उसकी खुशी का पारावार नहीं था। बेहतरीन अतर-फुलेल लगाये, हाथ में फूलों का ग़जरा लिए पहुँचा, देखा रानी चादर ओढ़े पलँग पर लेटी हुई है।

साथ की दासियों को बिदा करके एक किनारे बैठ गया। कहने लगा—"मलका शायद हमसे नाराज़ हैं। परन्तु मैं अल्लाह की कसम खाकर कहता हूँ कि आपसे निकाह करके दूसरी सब बेगमों को आपकी खिद्मत में रख दूँगा"।

जब उसने चद्दर हटायी तो देखा कि रूपमती का चेहरा जहर से काला पड़ गया है। सकते में आ गया, उस कामुक के लिए यह नयी बात थी कि इतनी मौज-शौक का

लोभ छोड़कर कोई खुदकुशी भी कर सकता है। पास में एक पत्र पड़ा था, खोलकर पढ़ने लगा।

आदम खाँ,

कहते हैं समय बड़ा बलवान होता है। हम सुखी थे, परमसुखी परन्तु तुमने हमारी जिन्दगी में बुरे ग्रह की तरह आकर हमें नेश्त-नाबूद कर दिया। हम हार गये, हमारा सितारा डूब गया। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि मेरे जिस्म पर भी तुम्हारा हक हो गया। मेरी जिन्दगी तो सुलतान के साथ बँधी हुई थी, पता नहीं वे इस धरती पर हैं या नहीं। मैं खुला बेगम की तरह उनके साथ दगा नहीं करूँगी। जहर खाकर मर रही हूँ। परन्तु यदि मैं मन-वचन-कर्म से पतिव्रता हूँ तो अन्तिम समय में शाप देती हूँ कि तुम भी जल्द ही कुत्ते की मौत मरोगे। (यह ऐतिहासिक तथ्य है कि आगरा लौटने पर जब बादशाह ने सारी बातें सुनीं तो आदमखाँ की बदतमीजी पर गुस्सा होकर उसे किले की दीवार से ढकेलकर मार दिया)।

दूसरे दिन संध्या के समय दो थके-हारे घायल मालवी नागरिकों ने सारंगपुर के रेवाशंकर के मन्दिर में रात्रि में विश्राम लिया। थोड़ी देर बाद उन्हें एक कोने से धीमे स्वर में एक भजन सुनायी दिया—"अखियाँ हरिदर्शन की प्यासी, प्रभु मिलन की प्यासी"।

आवाज पहिचानी हुई सी लगी। चकमक से रोशनी करने पर देखा कि एक घायल व्यक्ति मैले-कुचैले फटे कपड़ों में धीरे-धीरे तन्मय होकर भजन गा रहा था—

"हुजूर—सुल्तान आज इस हालत में"

"रायचन्द जी आप अचानक भले मिले, कहिये मेरी रूपमती की क्या खबर है"?

"हजूर महारानी पतिव्रता थी" अन्तिम समय तक उसने अपने फर्ज़ को निभाया। आदम जब उनके महल में गया तो उसे महारानी की जगह उनकी लाश मिली। उन्होंने तेज जहर खाकर जिन्दगी का खात्मा कर लिया था।

"रायचन्दजी, जब मेरी रूप मर गयी तब फिर मैं किसके लिए जिन्दा रहूँ?" पास में पड़े एक बड़े पत्थर को उठाकर जोर से सर पर दे मारा। लहू की धार बह निकली। थका-हारा शरीर मृत होकर एक तरफ लुढ़क गया।

पति-पत्नी दोनों की समाधि आज भी सारंगपुर में मौजूद है। कहते हैं—वहाँ पर अगर कोई पुकारता है तो "बाज" तो प्रतिध्वनि होती है—"रूप"।

●

तानसेन और ताना-रीरी

बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियों के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगाई जाती हैं। सन्त कबीर को हिन्दू कहा जाता है और मुसलमान भी। इसी प्रकार संगीत-सम्राट तानसेन को कुछ लोग मुसलमान बताते हैं तो कई हिन्दू। परन्तु इतिहास के अनुशीलन पर अब जो तथ्य प्रकाश में आये हैं, उनके आधार पर सिद्ध होता है कि तानसेन नागर ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज गुजरात से बेहट (ग्वालियर) की ओर आकर बस गये थे।

वे अकबर के नवरत्नों में थे और अकबर प्यार से उन्हें मियां तानसेन कहा करते। शायद इसी 'मियां' शब्द के कारण पंडित तानसेन के सम्बन्ध में भ्रम की शृंखला बढ़ती गयी। वे अद्भुत प्रतिभासम्पन्न थे, स्वर मधुर था—हृदय रसपूरित। नागर कुल में जन्म लेने के कारण सात्विकता के संस्कार जन्मजात थे। घर में भक्तिभाव, भजन एवं कीर्त्तन आदि का वातावरण होने के कारण उनकी प्रतिभा को मुखरित होने का अवसर मिला। पिता के निर्देश से वृन्दावन धाम गये और वहीं स्वामी हरिदास के पास रहकर संगीत साधना की। उन्हीं के आशीर्वाद से तानसेन को दीपक राग के स्वरों के सही संधान का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त हुआ।

संगीत में निष्णात होने पर उन्हें बांधवगढ़नरेश राजा रामचन्द्र ने अपने दरबार में बुला लिया। इन्हीं दिनों उन्होंने विभिन्न राग-रागिनियों की काव्य-रचना की। कबीर, सूर, तुलसी के भजनों की तरह उनकी रचनाएं भी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में घरों, मंदिरों और दरबारों तक प्रसिद्धि पाने लगीं।

सम्राट अकबर ने तानसेन के बारे में सुना। मंत्रों से यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने की बात हिन्दुओं के लिए भले ही अविश्वसनीय न हो, किन्तु मुसलमान के लिए एकाएक काबिले एतबार नहीं। शाहंशाह को जब दीपक राग की खूबियों का पता चला तो वह तानसेन को अपने दरबार में रखने के लिए आकुल हो उठे। उन्होंने सेनापति मिर्ज़ा अज़ीज को बांधवगढ़ भेजकर तानसेन को आगरा बुलवा लिया। राजा रामचन्द्र को मनसबदारी और खिलअतें बख्शी गयीं।

तानसेन आगरा में रहने लगे। बादशाह के साथ शिकार या सैर पर जाते, वहीं उनकी फरमायश पर संगीत सुनाते। धीरे-धीरे दोनों आपस में एक दूसरे के नज़दीक

होते गये। इसी बीच दरबारियों ने बादशाह से गुज़ारिश की कि उन्हें भी तानसेन का संगीत सुनने का मौका दिया जाय। बादशाह ने मंजूरी दे दी।

दरबार खचाखच भरा था। कुछ तानसेन के हुनर और इल्म की गहराई परखना चाहते थे, तो कई ऐसे भी थे जो दोष निकालने के लिए बेताब हो रहे थे। अकबर ने मुस्कुराकर कहा, "मिर्ज़ा आज हम ध्रुपद सुनना चाहेंगे।"

तानसेन ने सर झुकाया। साज़िन्दों की ओर संकेत किया जिन्हें वे अपने साथ बांधवगढ़ से ले आये थे। तानपूरे के लहराते राग में उनका कंठस्वर मृदंग की ताल पर गूँजने लगा। बादशाह और दरबारी, सभी तन्मय हो उठे। लगभग तीन घण्टे तक सुधबुध खोये से रहे। गायन की समाप्ति पर सारा दरबार एक स्वर में कह उठा, "आफ़रीन, बेहतरीन, लाजवाब!" तानसेन को दरबार के नवरत्नों में शामिल किया गया और खिलअतें बख्शी गयीं।

चित्तौड़ पर फतह हासिल हो चुका था। जशन मनाए जा रहे थे। मगर अकबर का दिल हल्दीघाटी पर मचायी गयी खूंरेज़ी से बेचैन था। उसकी आँखों के सामने चित्तौड़ के साके के धुएँ के अम्बार उठने लगते, दिल में अंधेरा सा छाया रहता। भयानक सूनापन! अपनी परेशानी किसी से ज़ाहिर भी कर नहीं पाता। हँसी-दिल्लगी, नाच-गाने, हरम की खूबसूरत बेगमें, अफ़ीम, शराब—सब कुछ नाकाम साबित हुए। एकाएक उसे ख्याल आया, मियाँ तानसेन! यह खौफनाक अंधेरा वही हटा सकते हैं। फौरन तानसेन को तलब किया गया।

शाम हो रही थी। बादशाह अपने खास-महल में तकिये के सहारे बैठे क्षितिज पर बढ़ते अंधेरे को देख रहे थे। तानसेन हाज़िर हुए। बादशाह ने कहा, "मियाँ तानसेन, मावदौलत को बेहद परेशानी है। आँखों के सामने और दिल में एक अँधेरा महसूस हो रहा है। हमने सुना है, दीपक राग में अँधेरा दूर करने की ताकत है। तुम्हें इसका इल्म और हुनर हासिल है। सुनाओ, ताकि इस मनहूस अंधेरे से निजात पा सकूँ। आज इसीलिए शमादानों में रोशनी की इज़ाजत नहीं दी गयी है। गाओ मियां, ऐसा गाओ कि गम व खौफ का अंधेरा काफूर हो और सारा आलम रोशन हो जाये।"

तानसेन स्तब्ध रह गये। दीपक राग छेड़ने का कितना भयंकर परिणाम हो सकता है इसे सोचकर उनका मन काँप उठा किन्तु शाही हुक्म को टालना संभव नहीं था। सरस्वती और गुरू का स्मरण कर सर्वप्रथम वैदिक मंत्रों के उच्चारण से अग्नि का आवाहन कर दीपक राग में गाना शुरू किया—

"निसदिन सिलगत रहत महान अग्नि
ओंकार पृथिवी पाताल आकाश तिनके वसन
दरशन प्रकाश आधार।

सकल ज्योति अग्नि ज्वालामय ओंकार
तू विचार आगम निगम
दूरि करौ सकल अन्धकार।
कहै मिया तानसेन सुन गुनी अकव्वर साहि
धरनि उद्धारकरन मंगलदीप मान ज्ञान
ब्रह्मावतार शिव ओंकार.......॥

मृदंग निनाद के साथ ओंकार की ध्वनि वारम्वार गूँज उठी। ऐसा लगा मानो दिशाएँ तरंगित हो उठी हों। तानसेन स्वयं आँखें मूँदे हुए ओंकार ध्वनि पर झूम उठते।

एकाएक बिजली सी कौंधी। शमादान जल उठे। खास महल जगमगा उठा। बादशाह ने कहा, "हमने दीपक राग की करामात के बारे में सिर्फ सुना था, आज चश्मदीद हुआ। तस्कीन के साथ सुकून भी हासिल हुआ। तुम्हारे इस हुनर की कीमत चुकायी नहीं जा सकती, फिर भी हम तुम्हें दो लाख अशर्फी भेंट करते हैं।

अनुकूल परिस्थिति न होने पर दीपक राग गाने का वही परिणाम हुआ जिसका अन्देशा था। तानसेन के तनवदन में जलन होने लगी। मेघमल्हार राग ही इसे शान्त कर सकता था किन्तु गायक के लिए इसका स्वयं गाना नहीं, वल्कि सुनना जरूरी था। तानसेन ने बादशाह को अपनी समस्या वतायी और उनसे आदेश लेकर सोमनाथ महादेव के दर्शन के लिए सौराष्ट्र चल पड़े।

मार्ग में वड़नगर के शिवमन्दिर में ठहरे। पूर्वजों की भूमि में आकर उन्हें मानसिक शान्ति का अनुभव हुआ। भादो बीत रहा था, फिर भी वर्षा नहीं हुई थी। धरती तप रही थी, अनावृष्टि और अकाल से त्राहि-त्राहि मची हुई थी।

परम्परा के अनुसार महिलाएँ भजन-कीर्त्तन करती हुई भगवान से वर्षा के लिए प्रार्थना कर रही थीं। सहसा तानसेन को लगा उनके देह की तपन धीरे-धीरे कम हो रही है। मेघ-मल्हार में उन्होंने अपनी ही रचना के शव्द सुने।

नाचति चपल चंचल गति
ध्वनि मृदगं घन भेदत जात,
कोकिल अलापत, पपैया आस देत
सुघर सुर मोर ध्यावत,
दादुर तार धार धुनि सुनियतु
रुनझुन धुनि पर नाचत
तानसेन प्रभु शिव सोमनाथ
रस पीयूष सरसावत॥

अपूर्व माधुर्य था, स्वरों में। सचमुच मानों कानों में अमृत रस पड़ने लगा। शरीर की जलन मिट गयी। वीणा, मृदंग और स्वर की दुनिया में वे आत्म-विस्मृत से हो गये।

थोड़ी देर बाद आकाश में घटाएँ उमड़ आयीं। जोरों की वर्षा होने लगी। तानसेन का तनमन स्निग्ध हो उठा। उधर सूखे तालाब भरने लगे। धरती की प्यास मिटी, जनता में हर्षोल्लास छा गया।

तानसेन ने उसी मन्दिर में रात बितायी। एक ही प्रश्न उनके मन में बराबर उठ रहा था कि इतने शुद्ध रूप से मेंघ-मल्हार गाने वाली वे ललनाएँ कौन थीं। पुजारी से पता चला कि स्थानीय जमींदार नीलकण्ठ राय की वे दोनों पुत्रवधुएँ हैं और भक्त नरसिंह मेहता की पुत्री नानीबाई की दौहित्री। नाम था, ताना और रीरी।

वड़नगर में बात छिपी नहीं रही कि मन्दिर में तानसेन ठहरे हुए हैं। राय नीलकण्ठ स्वयं उनसे मिलने आये। पता चला वे भी संगीत-प्रेमी हैं और गुरुभाई भी। भजन-कीर्तन का विशेष आयोजन किया गया। तानसेन सहर्ष सम्मिलित हुए। ताना-रीरी के गायन के उपरान्त उन्होंने भगवान हाटकेश्वर पर स्वरचित एक भजन सुनाया। लोग भाव-विभोर हो उठे।

तानसेन आगरा लौटे। इस घटना की चर्चा उन्होंने किसी से नहीं की, क्योंकि वे जानते थे ताना-रीरी के सौन्दर्य और गुण की विशेषता की बातें आगरे में क्या परिणाम उपस्थित कर सकती हैं। फिर भी, उनके पहुँचने से पहले ही अकबर को पूरी जानकारी मिल चुकी थी। नीलकण्ठ राय के किसी द्वेषी ने ताना-रीरी के सौन्दर्य और गायन कला की बातें बढ़ा-चढ़ा कर बादशाह को लिख भेजी थीं। बादशाह को तो ऐसे मौकों की तलाश रहती ही थी। फौरन एक वरिष्ठ सरदार को वड़नगर भेजा और जैसे भी हो दोनों बहनों को हाज़िर करने का हुक्म दिया।

वड़नगर पहुँचकर सरदार ने नीलकंठ राय को शाही हुक्म सुनाया। चारों ओर हाहाकार मच गया। ताना और रीरी ने भी स्थिति की गम्भीरता को समझा कि बादशाह का इरादा केवल मेघ-मल्हार सुनना नहीं, बल्कि कुछ और भी है।

गाँव के बड़े-बूढ़े और विशिष्ट जनों की सभा बुलायी गयी। अकबर से टकराने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता था। दोनों बहनों को आगरा भेज दिया जाय या सारे गाँव को मटियामेट होने दिया जाय। ताना और रीरी ने अपने श्वसुर और दादा को विश्वास दिलाया कि उन्हें आगरा आने दिया जाय। कुल की मर्यादा और सतीत्व को वे अक्षुण्ण बनाये रखेंगी। भगवान हाटकेश्वर उनकी रक्षा करेंगे।

चुने हुए दरबारियों और नवरत्नों के साथ दीवानेखास में गाने की महफ़िल का इन्तजाम किया गया। तानसेन के विशेष आग्रह पर दोनों बहनें पर्दे के पीछे बेगम

और शाहजादियों के बीच बैठीं। बादशाह ने मेघ-मल्हार गाने का हुक्म देते हुए मुस्कुरा कर कहा, "हम देखना चाहेंगे कि कार्तिक के महीने में बारिश मुमकिन है या नहीं।"

इधर साज़िन्दों ने सुर सम्हाला, उधर पर्दे के पीछे से उदासी भरी स्वर लहरी फूट निकली। ऐसा लग रहा था जीवन का समस्त रस शतधार होकर चतुर्दिक् फैल रहा है। बारिश कब शुरू हुई, इसका किसी को आभास तक न हो पाया। स्वर लहरी थम चुकी थी। पर्दे के पीछे फर्श पर पानी बढ़ने लगा। बेगम और शाहजादियाँ उठकर अपने-अपने महलों में जाने लगीं। उन्होंने देखा कि खून के सैलाब में दोनों बहनें एक दूसरे का हाथ पकड़े चिरनिद्रा में शान्त भाव से सो रही हैं। उनके वक्षस्थल से रक्त की धारा बह रही थी, पास ही दो कटारें पड़ी थीं।

●

जित्यो जी टोडरमल वीर

लगभग चार सौ वर्ष पहले की बात है। प्रतापी सम्राट अकबर का शासन था। उसके मन्त्रिमण्डल में नौ मन्त्री थे जिन्हें 'नवरत्न' कहा जाता था। उसमें टोडरमल का विशेष आदरपूर्ण स्थान था। वे वित्त और माल जैसे महत्त्पूर्ण विभागों को सम्हालते थे। राज्य के काम से उन्हें प्रायः ही पंजाव, सिंध और काश्मीर की यात्राएँ करनी पड़तीं।

आगरा से २०० मील दूर राजस्थान की सीमा पर नारनौल एक कस्वा है, वहाँ अग्रवाल समाज का एक प्रतिष्ठित और धनी परिवार था। टोडरमल का इस परिवार से मैत्री का सम्बन्ध था। वे आते-जाते उनके यहाँ एक-दो दिन आराम करने के लिये ठहर जाते थे।

एक वार, दो-तीन वर्ष तक वे नारनौल नहीं आये। इस बीच में उस परिवार पर संकट के वादल छा गये। सेठ का देहान्त हो गया, जो धन-सम्पत्ति थी वह मुनीमों की बदइन्तजामी से समाप्त हो गयी। घर में रह गयी, विधवा सेठानी और १५ वर्ष का किशोर पुत्र।

उन दिनों बहुत छोटी उम्र में बच्चों के सगाई-विवाह हो जाते थे। पुत्र की सगाई सेठजी के रहते ही पास के कस्बे में एक सम्पन्न स्वजातीय घराने में हो गयी थी। अब वह विवाह के योग्य हो गया। लड़की वाले उनकी नाजुक हालत को जान चुके थे। परन्तु उन दिनों विना पर्याप्त कारण के सम्बन्ध नहीं छोड़े जाते थे। कभी-कभी तो सम्बन्ध टूट जाने पर वरपक्ष के लोग अपने भाई-बन्धु और मित्रों के साथ हथियारों से सुसज्जित होकर बारात ले जाते और युद्ध में जीत करके बहू को ले आते।

कन्या पक्षवालों ने सुपारियों की एक कोथली नारनौल भेजी और लिखा कि विवाह का लगन फाल्गुन में है। आपके और हमारे घराने की इज्जत का ध्यान रखते हुए आप कम से कम इन सुपारियों जितने प्रतिष्ठित बाराती अवश्य लावें। हमारे यहाँ हमेशा वर हाथी के हौदे पर ढूकता है इसलिए कम से कम दो-तीन हाथी भी बारात में रहने जरूरी हैं।

सेठानी समझदार महिला थी, वह उन लोगों की चालाकी समझ गयी। सैकड़ों व्यक्तियों की बारात के लिए उसी अनुपात में रथ, घोड़े और ऊँट चाहिए। आने-जाने

के समय उन सबके लिए भोजन और पशुओं के लिए दाना-चारा। वह सब अब उनके वस की बात नहीं थी। परिवार के स्वजन और मित्रों से सलाह की, परन्तु कोई उपाय नजर नहीं आया।

सेठानी कई दिनों से इसी चिन्ता में थी कि अचानक पंजाब जाते हुए टोडरमल उनके यहाँ ठहरे। उन दिनों उत्तर भारत में पर्दाप्रथा थी, परन्तु सेठानी उनकी मुँह-बोली बहिन थी इसलिए उनसे बोलती और पर्दा नहीं करती थी। टोडरमल ने महसूस किया कि बहिन बहुत उदास है। कारण पूछने पर वह कुछ बोल नहीं पायी और सुबक-सुबक कर रोने लगी। थोड़ी देर में जब आश्वस्त हुई तब बताया कि लड़की वाले बहुत धनाढ्य हैं, वे अब सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं। सीधे तौर पर कहने से उन्हें अपनी बदनामी का डर है इसलिए ऐसी शर्तें रख रहे हैं—जिससे हमलोग स्वयं सगाई तोड़ दें। आज हमारी ऐसी दयनीय दशा हो गयी है कि हमें अपनी माँग (वाग्दत्ता) को छोड़ना पड़ रहा है।

सारी बातें सुनकर टोडरमल ने कहा कि आप चिन्ता मत करिये—जो कुछ जवाब देना होगा, मैं आपकी तरफ़ से भिजवा दूँगा। कुछ दिनों बाद कन्या पक्ष वालों के यहाँ मूँगों से भरी हुई एक कोथली लिए कासिद पहुँचा। पत्र में यथायोग्य के बाद लिखा था कि विवाह की तिथि हमें मंजूर है, परन्तु आपकी और हमारी इज्जत का ख्याल करके हम इतने बाराती लाना चाहते हैं, जितने मूंग इस कोथली में हैं। स्वर्गीय सेठ जी का जयपुर से लेकर आगरा तक बहुत लोगों से स्नेह-सम्पर्क था, भला इकलौते पुत्र के विवाहोत्सव पर उन सबको हम कैसे भूल सकते हैं? आप खातिर जमा रखें, बारात में बड़े से बड़े लोग आयेंगे। हम लोग बारात लेकर फलाँ दिन पहुँच रहे हैं, आप सारी तैयारी रखियेगा।

पत्र पढ़कर उन लोगों ने मूँग गिने, जिनकी संख्या करीब २ हजार थी। वे मन ही मन हँस रहे थे कि अधिक दुख से सेठानी शायद विक्षिप्त हो गयी है। इतने बारातियों के लिए जितने हाथी, घोड़े, ऊँट और रथ चाहिए—उन सबकी व्यवस्था तो शायद नगर सेठ भी नहीं कर सकते। रास्ते में इन सबके खाते-पीने और आराम के लिए भी लाखों रुपये चाहिये। खैर, उन्होंने कासिद के साथ उत्तर दे दिया कि हमें आपकी बात मंजूर है। बारातियों की खातिर-तवज्जह के लिए आप बेफिक्र रहें। हम शुभ दिन की प्रतीक्षा में हैं

इधर टोडरमल ने आगरा आकर अपने मित्रों और साथियों से सलाह की। बादशाह से भी अर्ज की कि हुजूर मेरे भानजे की बारात जायगी इसलिए शाही दरबार से पचास हाथी, पाँच सौ घोड़े और एक हजार रथ और ऊँट चाहिए। उस मौके पर शाही बाजे और तोपें भी बारात के साथ जाने की इजाजत बख्शी जाय।

बड़े-बड़े राजे-रईस, सरदार और आला अफसरों को बारात के लिए न्यौता दिया गया। रास्ते में भोजन वगैरह की व्यवस्था के लिए पहले से ही सैकड़ों आदमी सरंजाम के लिए भेज दिये गये। नारनौल पहुँचकर राजा टोडरमल ने लाखों रुपयों का भात भरा। वहिन (वर की माता) के लिए मोतियों जड़ी चुनरी और वर-वधू के लिए कीमती गहनों और कपड़ों का अम्बार लगा दिया। वर पक्ष के लोगों के लिए यथायोग्य भेंट और सिरोपाव।

सारे कस्बे में चर्चा फैल गयी कि नरसी मेहता के मुनीम साँवरिया सेठ जैसा भात सेठजी के यहाँ आया है।

नारनौल से जो बारात रवाना हुई, वैसी इसके पहले देखी-सुनी नहीं गयी थी, घोड़े, रथ, ऊँट, पालकी और सुखपालों की लम्बी कतार मीलों तक जा रही थी। करीब दो हजार तो बाराती थे और उनके साथ एक हजार नौकर, सईस, महावत और रसोइये आदि। इनके सिवाय बाजे वाले, गाने वाले और नर्तकियों की भी एक बड़ी तादाद थी।

कन्या पक्ष वालों ने जब सुना बारात में जयपुर महाराज मानसिंह, अर्थमन्त्री टोडरमल, खानखाना (प्रधानमन्त्री) अब्दुल रहीम और राजा बीरबल आदि देश के बड़े से बड़े लोग आ रहे हैं। साथ में हाथी, घोड़े, रथ और ऊँटों का एक बड़ा काफिला है तो वे घबरा गये—यद्यपि वे नगर सेठ थे, लखपती थे, परन्तु फिर भी इतनी बड़ी बारात की व्यवस्था करनी उनके वश की बात नहीं थी।

अगवानी के लिए कन्या का पिता कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को साथ लेकर गया। टोडरमल के पैरों में पगड़ी रखकर कहने लगा कि हमने अपनी तरफ से बहुत भूल की, जो बहाना बनाकर सम्बन्ध तोड़ना चाहते थे, परन्तु अब हमारी इज्जत आपके हाथ है। इतनी बड़ी बारात ठहराने का न तो हमारे गाँव में स्थान है और न हम इन सबके लिए भोजन और चारे-पानी की व्यवस्था ही कर सकते हैं। सैकड़ों वर्षों से हमारे परिवार को नगर-सेठ की पदवी है, आपकी दया से आस-पास के गाँवों में इज्जत है। परन्तु जहाँ हमारे अनेक स्वजन मित्र हैं, वहाँ ईर्ष्यालु दुश्मनों की संख्या भी कम नहीं है। उन्हें हमारी बेइज्जती से जग-हँसाई करने का मौका मिल जायगा। कन्यादान मेरे परिवार का भाई कर देगा। मैं जिल्लत और बेइज्जती देखने के पहले गाँव छोड़ कर सदा के लिए चला जाना चाहता हूँ।

राजा टोडरमल ने उसे उठाकर गले लगाते हुए कहा—"जो कुछ हुआ उसे भूल जाइये, अब तो आप हमारे सम्बन्धी हैं। आपकी मान-बड़ाई में ही हमारी शोभा है। आप चिन्ता न करें, किसी को भी पता नहीं चलेगा। सारी व्यवस्था हमलोगों की तरफ से है। आप केवल ढुकाव के समय शर्बत-पान से बारातियों की अच्छी तरह खातिरदारी कर दीजियेगा।"

बारात की सजावट और आतिशबाजी देखने के लिए आस-पास के गाँवों से हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे आये थे। उन सबके लिए यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। मोतियों की झूल पहने हाथी और घोड़े झूम रहे थें। चार-पाँच तरह के शाही बाजे थे। आगरा की प्रसिद्ध नर्तकियों का नाच-गाना हो रहा था और तरह-तरह की आतिशबाजियों की रोशनी से आसमान चमक रहा था। सारे विवाह-कार्य आनन्दपूर्वक समाप्त हुए। वधू को विदा कराकर जब वे नारनौल पहुँचे और द्वारचार हुआ तो वर पक्ष की महिलाओं ने जो गीत गाया वह था—

"अैतो जीत्याजी, जीत्या म्हारा टोडरमल वीर,
केशरियो बनड़ो जीत्यो म्हारे वीरैंजी के पाण।"

आज उस बात को ४०० वर्ष हो गये; परन्तु अभी तक बहू की अगवानी के समय राजस्थान में उस उदारमना भाई टोडरमल की पुण्य-स्मृति में यही गीत गाया जाता है।

मरण त्यौहार

सन् १६०० की बात है। मुग़लों के लगातार हमलों से मेवाड़ जर्जर हो चुका था, खेती-बाड़ी सब उजड़ गयी थी। राणा प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह तीन वर्ष पहले मेवाड़ की गद्दी पर बैठ चुके थे। आगरे के सिंहासन पर प्रतापी बादशाह अकबर था। चित्तौड़, उँटाला, माही और मांडल के किले मुग़लों के पास थे। अकबर को हर कीमत पर मेवाड़ के राणाओं का सिर नीचा करना था। शाहज़ादे सलीम को एक बड़ी फौज के साथ मेवाड़-विजय के लिए भेजा।

दुर्भाग्य से उसी समय मेवाड़ के दो प्रमुख स्तम्भ चूड़ावत और शक्तावत घरानों में हरावल (युद्ध में सबसे आगे रहने का निशान) को लेकर वाद-विवाद खड़ा हो गया।

दोनों पक्ष के मुखिया महाराणा के पास आये। चूड़ावतों ने कहा कि हमारे पूर्वज वीर चूड़ा के अद्‌भुत बलिदान के कारण हरावल का अधिकार हमें मिला था। इसकी मान-रक्षा के लिए न जाने कितना बलिदान हमें करना पड़ा है। अब शक्तावत अधिक शक्तिशाली हो गये हैं, इसलिए हमारा पीढ़ियों से चला आता अधिकार छीन लेना चाहते हैं। हम न्याय माँगते हैं, महाराज न्याय करें।

शक्तावत सरदार बल्लूजी ने कहा—"महाराज मेरे २१ पुत्रों में से अधिकांश पिछले युद्धों में वीर गति को प्राप्त हो चुके हैं। अब बचे हुए सब युवक और किशोर पौत्र मातृभूमि के लिए जीवन उत्सर्ग करने को तैयार हैं। चूड़ावतों ने बहुत वर्षों तक हरावल रखा है। अब वह इज्जत हमें मिलनी चाहिए।"

महाराज सोचते कि दोनों सरदार अद्‌भुत माँग पर अड़े हुए हैं। हरावल-रक्षक की मृत्यु प्रायः निश्चित रहती है, क्योंकि वह युद्ध में सबसे आगे—हाथी या घोड़े पर रहता है। इसी की रक्षा के लिए वीर चूड़ा के वंशज बहुत बार मर मिटे। अब चाचा शक्तसिहजी के पुत्र-पौत्र जान-बूझकर यह खतरा उठाने की जिद्द पर अड़े हैं।

राणा अमरसिंह, प्रतापसिंह सरीखे नहीं थे कि निडरता से छोटे-बड़े सरदारों को डाँट देते। लगातार के युद्धों से वे थक भी गये थे। वे निश्चित राय देने में डरने लगे। माँग तो चूड़ावतों की वाजिब थी, परन्तु शक्तावत अत्यन्त शक्तिशाली हो गये थे। उन्हें किसी कीमत पर नाराज़ नहीं कर सकते थे।

राज्य के सभी सरदारों की सभा जुड़ी हुई थी। उन्होंने अपना मत ऊँची आवाज में इस प्रकार दिया।

पिताजी के स्वर्गवास के बाद आपलोग इस प्रकार के आपसी झगड़ों में उलझ गये हैं, यह मेवाड़ के लिए दुर्भाग्य की बात है। मुग़लों की फौजें बढ़ी आ रही हैं। साथ में आमेर की राजूपती सेना भी है, ऐसे संकट के समय आप यह आपसी विवाद ले बैठें। खैर। मेरा एक सुझाव है। उँटाला का किला बहुत वर्षों से मुग़लों के पास है, आप में से जो पहले उसे सर करके उसपर मेवाड़ी झण्डा फहरा देगा, वही हरावल का अधिकारी होगा।

दोनों पक्षों ने यह बात मान ली, युद्ध की तैयारी करने लगे। दोनों परिवारों के १३ वर्ष से लेकर ६५ वर्ष तक के पुरुषों में से शायद ही कोई घर में रहा हो। महिलायें अपने पति, पुत्रों और किशोर पौत्रों को कुंकुम का टीका लगाकर शंख-ध्वनि करके उँटाले के लिए विदा कर रही थीं। एक प्रकार से यह आखिरी विदाई थी।

किले में ये खबरें बढ़-चढ़कर पहुँची। मुग़लों के पास राजपूताने में उन दिनों तुर्कों और राजपूतों की बड़ी सेना थी। उसमें से चुनी हुई उँटाला के किले में आकर इकट्ठी हो गयी।

शक्तावतों ने किले के मुख्य द्वार पर हमला किया, जबकि चूड़ावत पीछे की दीवार पर सीढ़ी लगाकर चढ़ने की कोशिश करने लगे। ऊपर से तीर, गर्म तेल और अंगारों की वर्षा हो रही थी। अनेक राजपूत वीर घायल होकर गिर रहे थे, परन्तु तुरन्त ही उनका स्थान दूसरे ले लेते।

मुग़लों ने देखा कि शत्रुओं को तो जैसे मौत की परवाह ही नहीं है, एक की जगह फिर चार ले लेते हैं। वे थककर सुस्ताने लगे। इतने में चूड़ावत सरदार जेते सिंह किले की दीवार पर पहुँच गया, साथ में उसके दो पौत्र थे। तुरन्त ही दो-तीन गोली लगी और वह धराशायी हो गया। परन्तु उसके आदेशानुसार उसके पौत्रों ने उसका सिर काटकर किले के भीतर फेंक दिया और वहाँ मेवाड़ी झण्डा लगा दिया। बचे हुए सैनिक भी पहुँच गये, मुग़लों ने हथियार डाल दिये।

इधर सशक्त शक्तावतों ने एक बड़े हाथी को किले का फाटक तोड़ने के लिए आगे बढ़ाया, परन्तु दरवाजे के लोहे के तीखे शूलों से घायल होकर हाथी बार-बार पीछे हटता गया। शक्तावत सरदार बल्लूजी हाथी के हौदे पर से कूदकर किले की शूलों के आगे भिड़ गये और महावत को आज्ञा दी कि अब जोर से हाथी को आगे बढ़ाओ।

महावत इस अद्‌भुत आज्ञा को सुनकर डर-सा गया, परन्तु उन्होंने कड़कती आवाज में कहा कि उम्र भर तुम जान की जोखिम उठाकर भी हमारी सेवा करते रहे हो, क्या अब मेरे वंश की बेइज्जती कराओगे। देर मत करो, हाथी पर अंकुश का प्रहार करके आगे बढ़ाओ।

उनका शरीर शूलों में क्षत-विक्षत होकर विंध गया, रक्त की धारा बहने लगी, परन्तु मज़बूत दरवाजा चरमरा कर टूट गया। बचे हुए हुए शक्तावत हर-हर महादेव कहते हुए किले में पहुँचे, परन्तु वहाँ जाकर देखा कि पहले से ही चूड़ावतों का झण्डा फहरा रहा है।

चूड़ावतों के पाँच-दस बचे हुए वीरों ने कहा कि हरावल का अधिकार हमेशा हमारा रहा है—हमारा रहेगा। अब व्यर्थ में आपस का वैर-भाव छोड़कर हमें मुग़लों की फौज से सम्मिलित रूप में लड़ना चाहिए।

महाराणा अमरसिंह के नेतृत्व में मेवाड़ी फौज बादशाही सेना से लड़ने जा रही थी। हरावल एक चूड़ावत किशोर के हाथ में था।

●

दोहरा बलिदान

●

अजमेर से अठारह मील दूर किशनगढ़ नाम का एक कस्वा है। तीन सौ वर्ष पहले इसका नाम रूपनगर था। सन् १६६० की वात है। मानसिंह राठौर की यह एक छोटी-सी रियासत थी। उनकी वहन राजकुमारी चारुमती अपने रूप और गुणों के कारण सारे राजस्थान में सुविख्यात थी। इसकी चर्चा वादशाह औरंगजेव के कानों तक पहुँची। यद्यपि वह अन्य मुग़ल सम्राटों की तरह ऐय्याश नहीं था, फिर भी चारुमती के सौन्दर्य पर रीझकर उसे हरम में दाखिल करने के लिए वेताव हो उठा। कासिद के ज़रिये रूपनगर-नरेश को खवर भेज दी कि अमुक दिन जहाँपनाह आलमगीर पहुँच रहे हैं, राजकुमारी के निकाह की सारी तैयारी ठीक रखें।

राजकुमारी चारुमती सुन्दरी होने के साथ विदुषी भी थी। उन दिनों मेवाड़ के महाराणा थे, राजसिंह। धीर, वीर, गंभीर ३१ वर्षीय राणा की प्रतिष्ठा सर्वत्र थी। उसने राणा के शौर्य की गाथा सुनी थी। मन ही मन पति के रूप में उनका वरण भी कर रखा था। वादशाह के फरमान को सुनकर वह चिन्तित हो उठी। मुग़लसम्राट की शक्ति और सामर्थ्य के आगे रूपनगर की क्या बिसात। उसके कारण कितने प्राण चले जायेंगे। यदि वह स्वयं वलिदान हो जाये तो कम से कम व्यर्थ का रक्तपात वचेगा और राज्य भी।

राजकुमारी की एक मुँहवोली सखी ने सुझाव दिया कि इस प्रकार स्वयं को वलि देने से पहले मेवाड़ के राणा राजसिंह को एक पत्र भेजना चाहिए। राजस्थान में वे ही केवल एक ऐसे वीर हैं, जो औरंगजेव से लोहा ले सकते हैं। आखिर उसने अपने राजपुरोहित के हाथ एक पत्र महाराणा को भेजा। सन्देश में लिखा था कि "मैंने मन ही मन स्वयं को आपके अर्पण कर दिया है। आपकी सेवा के सौभाग्य की कामना थी, किन्तु दुराचारी औरंगजेव वलात् मुझे अपने हरम में ले जाना चाहता है। यदि आप एक अवला नारी की मान-मर्यादा और शील की रक्षा करना कर्तव्य समझें, तो अमुक दिन के पूर्व ही रूपनगर पधारें। यदि किन्हीं कारणों से ऐसा संभव न हुआ तो आत्मघात द्वारा मैं नारीत्व के सम्मान की रक्षा के लिए वाध्य होऊँगी।"

पत्र पढ़कर महाराणा चिन्तित हो उठे। वे अपने सीमित साधन और मुग़ल सम्राट की अथाह शक्ति को जानते थे। पहले से ही मेवाड़ अनवरत युद्धों के कारण थका और शिथिल-सा था। वे नया खतरा उठाना नहीं चाहते थे, किन्तु यहाँ प्रश्न था एक

निरपराध राजपूत रमणी की शील-रक्षा का। उन्होंने अपने सामंतों को बुलाया और परामर्श के लिए सारी स्थिति स्पष्ट रख दी। भला राजपूत युद्ध के खतरों से कब घबराते? महाराणा अमरसिंह के बाद लंबे अर्से तक उनकी तलवारें म्यान में सोयी पड़ी थीं। इस घटना के पीछे उन्होंने उपयुक्त अवसर देखा। केलवाड़ा के सरदार ने कहा कि बादशाह ने जो तारीख दी है, वह अत्यन्त निकट है। कितनी भी शीघ्रता की जाय, हम उस दिन तक रूपनगर नहीं पहुँच पायेंगे। अतएव, राजकुमारी की रक्षा हम शायद ही कर पायें। सभी सामंत और सरदार चिन्तामग्न हो मौन बैठे थे। इसी बीच अठारह वर्ष के चूड़ावत सरदार ने उठकर कहा—महाराणा, मैंने इसका उपाय सोच लिया। आप तुरन्त रूपनगर जाकर राजकुमारी से विवाह कर उदयपुर आ जायँ। मैं चूड़ावतों की सेना लेकर दिल्ली से रूपनगर के रास्ते को रोक रखूँगा। जब-तक आप उदयपुर नहीं पहुँच जायेंगे, मुग़ल सेना आगे नहीं बढ़ पायेगी, यह हमारी टेक है।

राणा राजसिंह ससैन्य रूपनगर जाने की तैयारी में लग गये। इधर चूड़ावत सरदार ने अपने भाई-बन्धुओं को एकत्रित कर स्थिति से परिचित कराया। तीन हजार किशोर, युवा और वृद्ध चूड़ावतों ने मृत्यु से जूझने के लिए कूँच का धौंसा बजा दिया। संयोग से चूड़ावत सरदार का विवाह हाडी राजकुमारी से दो दिन पूर्व ही हुआ था। अभी कंगन-डोरे भी नहीं खुले थे, बाहर से सगे-सम्बन्धी और अतिथि आये हुए थे। चहल-पहल और उल्लास का वातावरण था, ऐसे में वे रनिवास पहुँचे। उन्होंने हाडी रानी को सारी बात बताते हुए कहा कि इस पुण्यदायित्व के निर्वाह में मेरा वापस आना संभव नहीं। खेद है, दो-चार दिन का भी दाम्पत्य सुख तुम्हें दे न सका।

हाडी रानी ने सरदार को उदास देखकर कहा—"आप अकारण मन में अवसाद न लायें। मैं आपसे पीछे न रहूँगी। यहाँ नहीं तो स्वर्ग में आपसे अवश्य मिलूँगी।" सरदार को प्रोत्साहित करते हुए उसने विदा किया।

फिर भी, युवक चूड़ावत का मन उन्हें पीछे खींच रहा था। वह यही सोच रहा था कि काश! एक रात वह अपनी नवविवाहिता वधू के साथ बिता पाता। घोड़े पर चढ़ते हुए बरबस उनकी निगाहें झरोखे की ओर चली जाती थीं। रानी ने यह देखा कि सरदार का चित्त यदि इसी प्रकार दुविधाग्रस्त रहा तो कर्त्तव्य-निर्वाह में बाधा होगी। उसने फौरन सरदार के पास सूचना भेजी कि आप कुछ क्षण रुकें, मैं एक सेनाणी भेज रही हूँ।

इसी बीच उसने दासी के हाथ से तलवार लेकर अपनी गर्दन पर झटका दिया। वह सुन्दर सुकुमार मुख धड़ से अलग हो गया। हाडी रानी के आदेशानुसार सेवकों ने एक थाल में मुण्ड रख फूलों से सजा दिया और सौभाग्य-चिह्नों से सजे उस थाल को चूड़ावत सरदार को भेंट कर दिया।

सरदार एक बार तो सकते में आ गया, फिर उसने रानी के मुण्ड को डोरी में बाँधकर गले में लटका लिया और घोड़े को एड़ लगा दी।

बादशाह औरंगजेब की सेना रूपनगर की तरफ बढ़ती आ रही थी। ६० हजार की विशाल सेना को रोकने के लिए चूड़ावत वीरों की तीन हजार की टोली दीवार बनकर खड़ी हो गयी। सात दिन तक बहुत दमखम लगाने पर भी शाही फौज आगे बढ़ न पायी। बादशाह औरंगजेब ने स्वयं दूरबीन से देखा किशोर चूड़ावत सरदार मुण्डमाल पहने काल-भैरव की तरह युद्ध कर रहा है। उसके मुँह से निकला—"अल्लाह, काश, मेरे बेटों-पोतों में ऐसा कोई जाँबाज़ होता।"

ऊँची लहरों के सामने छोटी दीवार कब तक टिकती। सारे राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए। शाही फौज रूपनगर की ओर बढ़ गयी। किन्तु, जब वे वहाँ पहुँचे तब तक चारुमती से विवाह कर महाराणा राजसिंह सकुशल उदयपुर वापस आ गये थे।

अपमान की ज्वाला में औरंगजेब भुन उठा, पर करता भी क्या? मुट्ठी को कसकर उसने अस्फुट शब्दों में कहा, इंशा अल्लाह, इस तौहीनी का बदला लेकर रहूँगा।

बुन्देलों की आन

सन् १९६१ की वात है। चिरगाँव से राष्ट्र कवि मैथिलीशरण जी और सियारामशरण जी के साथ इतिहासप्रसिद्ध बुन्देलों की राजधानी ओरछा देखने गया था। वहाँ के दुर्ग में और महलों में सैंकड़ों वर्ष पहले के तोपों के गोलों के चिह्न अभी तक दिखाई देते थे।

वेतवा नदी के किनारे अब ओरछा एक साधारण-सा गाँव रह गया है। परन्तु आज से तीन सौ वर्ष पहले यह एक समृद्ध नगर था। सन् १६६३ में महाराज चम्पतराय यहाँ से चले गये। उसके वाद यह मुगलों के अधीन रहा। यद्यपि उनके पुत्र छत्रसाल इतिहासप्रसिद्ध वीर हुए। परन्तु वे ओरछा को वापस नहीं ले पाये।

गुप्ताजी ने महल के एक कक्ष में बैठकर हमें दो कथाएँ सुनाईं, जिनको सुनकर मन में सिहरन के साथ आँखों में आँसू आ गये।

पहली तो कुँवर हरदौल की थी और दूसरी महाराज चम्पतराय की रानी सारंधा की।

उन्होंने कहा कि द्विजेन्द्रलाल राय और कर्नल टाड ने सिसोदिया और राठौड़ों को इतिहास में अमर कर दिया, वर्ना बुन्देलों की वीरता किसी से कम नहीं थी। इस कथा की नायिका सारंधा बुन्देलखण्ड के एक साधारण जमीदार की पुत्री थी। अपनी सुन्दरता और साहस के लिए दूर-दूर तक उसकी प्रसिद्धि थी। उन दिनों बुन्देलखण्ड में मुगलों और पठानों के आक्रमण बार-बार होते रहते थे, इसलिए स्त्रियाँ भी शस्त्र-संचालन जानती थीं।

ओरछा नरेश महाराज चम्पतराय ने उसके सौन्दर्य और शौर्य के वारे में सुन रखा था। उन्होंने सारंधा के बड़े भाई ठाकुर अनिरुद्धसिंह के पास विवाह का पैगाम भेजा।

ठाकुर फूले नहीं समाये, कहाँ तो इतने बड़े राज्य के अधिपति और कहाँ वे छोटे से जागीरदार।

फिर भी उन्होंने कहलवाया कि महाराज की चार रानियाँ पहले से हैं। अगर वे मेरी वहिन को पटरानी वनावें और इसका पुत्र ही राज्याधिकारी हो तो रिश्ता हमें मंजूर है।

वड़ी घूमधाम से विवाह होकर वह ओरछा रहने लगी। उसके चार पुत्र हुए, जिनमें एक परम प्रतापी छत्रसाल भी थे।

चम्पतराय, शाहजहाँ के दरबार में बड़े मनसबदार थे। ओरछा के सिवाय कालपी भी उनकी जागीर में थी। जब औरंगजेब तख्त पर बैठा तो उसने उनका दर्जा बढ़ाकर वारह हजारी मनसबदार कर दिया।

उस समय हिन्दू राजाओं में सिवाय जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के इतना बड़ा सम्मान और किसी का नहीं था।

रानी सारंधा और पुत्रों के साथ चम्पतराय बीच-बीच में दिल्ली रहते थे। उनके पास एक इराकी घोड़ा था, जिसका जोड़ा सल्तनत में दूसरा नहीं था। किसी समय यह घोड़ा शाहजहाँ के सेनापति वली वहादुर का था, जिसे चम्पतराय युद्ध में जीतकर अपने अस्तवल में ले आया था।

अब वली वहादुर औरंगजेब का आला सेनापति हो गया था और घोड़े को वापस लेने का मौका ढूँढ़ रहा था।

एक दिन कुँवर छत्रसाल घोड़े पर चढ़कर सैर को गया था तजवली वहादुर के सिपाहियों ने घोड़ा छीन लिया।

छत्रसाल उस समय केवल १४ वर्ष का वालक था। रानी को घर आकर सारी वारदात वताई, उसके चेहरे पर उदासी छायी हुई थी। उस समय चम्पतराय किसी युद्ध पर गये हुए थे। दिल्ली में रानी अकेली थी। उसने अपने पच्चीस विश्वस्त सिपाहियों को साथ में लिया और वादशाह के दरवार में जाकर वली बहादुर को ललकारा।

"खां साहव ! एक बच्चे पर हाथ उठाते आपको शर्म नहीं आयी, अगर मर्द थे तो घोड़े को लड़ाई में न छोड़ आते।"

वादशाह और मुसाहिवों ने देखा कि एक अत्यन्त तेजस्वी और रूपवती महिला तलवार हाथ में लिये खां साहब को ललकार रही है।

बादशाह औरंगजेव अपने मुस्लिम सेनापति का भरे दरवार में अपमान होता देखकर गुस्से से काँपने लगा, परन्तु वह बड़ा कूटनीतिज्ञ था। राजा चम्पतराय की वीरता और साहस को जानता था। उसने रानी कीं तरफ मुखातिव होकर कहा—"रानी साहिवा, माँ-ब्दौलत आपकी बहादुरी से वहुत खुश हैं; परन्तु अपने एक घोड़े के लिए सल्तनत के आला सेनापति को नाराज करना आपके और राजा साहव के हक में अच्छा नहीं होगा।"

"वादशाह सलामत, सवाल घोड़े का नहीं है—बल्कि आन का है। हम बुन्देले अपनी इज्जत और मान के लिए सव कुछ छोड़ने को तैयार हैं।

"रानी, अगर राजा यहाँ होते तो हमारे हजूर में शायद ऐसे अल्फाज कहने की गुस्ताखी न करते, खैर ! आप लोग अपने डेरे पर जाइये घोड़ा आपको मिल जायेगा, परन्तु उसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी।"

जव राजा चम्पतराय दिल्ली आये और सारी वातें सुनीं तो वहुत चिन्तित हुए, परन्तु उन्होंने भी अन्त तक रानी और कुँवर का साथ दिया। उनकी मनसवदारी और जागीर छीन ली गई। वे ओरछा में आकर रहने लगे।

वली अहमद अपमान को भूला नहीं था। कुछ दिनों वाद उसने एक वड़ी फौज लेकर ओरछा को घेर लिया। उसकी फौज में देश-धर्म-द्रोही कुछ राजपूत भी थे।

यद्यपि वुन्देले वड़ी वहादुरी से लड़े, भला वादशाही फौज के सामने उनकी क्या हस्ती थी?

धीरे-धीरे सारे सिपाही मारे गये, किले में केवल स्त्रियाँ और वच्चे रह गये, राजा ने घायल होकर खाट पकड ली।

रानी रात-दिन पति की सेवा में रहती, परन्तु उसे वार-वार अपशकुन होने लगे। ऐसा लगा कि अव किले को वचाना मुश्किल है। सोचा, अगर हम स्वयं किसी प्रकार वाहर निकलकर दूर स्थान पर चले जायें तो शायद दूसरे लोगों की जान वच जायेगी।

केवल मात्र दस सिपाहियों के साथ राजा और रानी अन्धेरी रात में किले के गुप्त दरवाजे से वाहर निकले। रानी घोड़े पर थी, जवकि बीमार राजा पालकी में।

दूसरे दिन मुगलों के सिपाहियों ने घेर लिया। दसों सिपाही वीरता से जूझते हुए मारे गये।

रानी भी काफी हिम्मत और वहादुरी से लड़ी, परन्तु वड़ी फौज के सामने उस अकेली की भला क्या हस्ती थी? संगीन रूप से घायल हो गयी।

जल्दी से वार वचाती हुई महाराज की पालकी के पास आकर कहने लगी "महाराज अन्तिम विदाई लेने आयी हूँ—भूल-चूक क्षमा करेंगे। आपके चरणों की सेवा करने के लिए वहाँ प्रतीक्षा करूँगी।"

"रानी बीस वर्षों से सुख-दुःख की साथी थी, आज मुझे इन दुश्मनों के हाथ वीमारी हालत में छोड़कर जाते हुए तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं होती है। क्या मुझे उम्र भर मुगलों की कैद में छोड़ जाओगी?"

"महाराज कल तक मैं ओरछा राज्य की रानी थी, परन्तु आज हर प्रकार से असहाय हूँ—फिर भी मुझे आप जो आज्ञा देंगे, शिरोधार्य करूँगी।"

"सारंधा तुमने सदा मेरी वात मानी है। यद्यपि आज मैं वीमार और असहाय हूँ, फिर भी मुझे भरोसा है कि मेरी अन्तिम बात को भी तुम मानोगी।

मेरा मन कहता है कि तुम्हारा वीर पुत्र जिन्दा है, वह दुश्मनों से अवश्य वदला लेगा। तुम अपनी यह तलवार पहले मेरी छाती में चुभो दो और फिर अपनी में।"

रानी सकते में आकर रोते हुए कहने लगी— "महाराज, आप यह कैसी आज्ञा दे रहे हैं ? क्या कहीं आज तक ऐसा हुआ है ? मुझे आप क्या सदा के लिए पतिहन्ता बना जाना चाहते हैं ?

"रानी यह समय निजी जज्बातों का नहीं है, तुमने मुझे वचन दिया है, उसे पूरा करो।"

बादशाही सिपाही जब वहाँ पहुँचे तो दो तड़पती हुई लाशों को देखा ! रानी का सिर पति की छाती पर टिका हुआ था।

दो शेरों की लड़ाई

१७ वीं शताब्दि में राजस्थान के विभिन्न राज्यों में कुछ अद्भुत प्रतिभाशाली और वीर राजा हुए हैं—इस संदर्भ में मेवाड़ के राणा राजसिंह, जोधपुर के जसवंतसिंह और जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह का नाम लिया जा सकता है। जसवंत सिंह और जयसिंह तो शाहजहाँ और औरंगजेब के आला सेनापतियों में थे।

सन् १६४० के लगभग की बात है। औरंगजेब २२ वर्ष का युवक था। दक्षिण को कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ जीत कर आया था।

मुल्ला और मौलवी उसकी बहादुरी और इस्लाम-परस्ती का प्रचार जनता में करते रहते थे। उन्हीं दिनों जोधपुर के युवक राजा जसवंत सिंह मुग़ल दरबार में रहने के लिए आगरा आये। यह एक प्रकार से रिवाज सा था कि रियासतों के राजा या युवराज में से कोई एक बादशाह की सेवा में रहे।

महाराज के साथ में उनकी रानियाँ, मुसाहिब तथा कुछ जागीरदार भी आये। इन्हीं जागीरदारों में आसोप के युवक ठाकुर मुकुन्ददास भी थे। जोधपुर में ही नहीं, बल्कि आगरा तक उनकी बहादुरी की बातें बढ़चढ़ कर फैल चुकी थीं।

बादशाह शाहजहाँ का दरबार लगा हुआ था। सल्तनत के अमीर-उमरा अपनी-अपनी जगह पर बैठे या खड़े थे। बादशाह की दाहिनी तरफ युवराज दाराशिकोह बैठा था, बायीं तरफ औरंगजेब।

महाराज जसवंत सिंह अपने सरदारों के साथ नज़र करने आये। लोगों ने देखा कि एक दैत्य सा लम्बा-चौड़ा युवक सिंह की सी मस्तानी चाल से आ रहा है। चौड़ी छाती, लम्बे हाथ तथा उन्नत ललाट। सबकी आँखें जसवंत सिंह से हटकर इस युवक पर जा टिकीं। नया-नया शाही दरबार में आया था, वहाँ के रीति-रिवाजों को नहीं जानता था। बादशाह को नज़र करके पीठ फिरा कर वापस आगया, परन्तु बादशाह उसके सौन्दर्य से इतना विमुग्ध हो गया था कि इस बात पर उनका ध्यान नहीं गया।

औरंगजेब ने उन्हीं दिनों एक मस्त बिगड़े हाथी को वश में किया था। वह अपने को अद्वितीय बहादुर समझता था; परन्तु मुकुन्ददास को देखकर उसके मन में ठेस सी लगी, बिना कारण के ईर्ष्या उमड़ आयी।

आये दिन बादशाह के कान भरने लगा—'अब्बा हुजुर, यह नया राजपूत उजड्ड तथा मूर्ख है, इसको अपनी ताकत का घमंड भी है। कभी न कभी रियासत को इससे

खतरा हो सकता है—समय रहते ही इसे कुचल देना चाहिए।"

कुछ दिनों तक तो बादशाह ने तवज्जह नहीं दिया, परन्तु उसकी प्यारी बेटी रोशन आरा ने भी औरंगजेब के कहने से पिता के कान भरने शुरू कर दिये।

एक दिन भरे दरबार में बादशाह ने महाराज जसवन्त सिंह को कहा कि "आपके युवक सरदार मुकुन्ददास की बहादुरी और जिस्मानी ताकत के बारे में बहुत-कुछ सुना है, मा-बदौलत उसका मुआइना करना चाहते हैं। हमारी मन्शा है कि शाही शेर बाजबहादुर से यह कुश्ती लड़े।"

महाराज तो सकते में आ गये, कहने लगे—"हूजर शायद इस युवक की नातजुर्बेकारी से नाराज हो गये हैं, इस बार इसे माफ़ किया जाय, आइन्दा शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।"

इतने में शाहजादा औरंगजेब कहने लगा—"महाराज जसवंत सिंह, सुना है इसको किसी हिन्दु देवी का इष्ट है, जिसकी सवारी सिंह है, फिर भला आप क्यों डरते हैं—वह देवी खुद इसकी जान की हमारे सिंह से हिफाजत करेंगी।"

जसवंत सिंह सारे षड़यंत्र को समझ गये। उन्हें यह भी पता लग गया था कि शाहजादा औरंगजेब मुकुन्ददास को मार डालना चाहता है।

बचाव का कोई उपाय न देखकर उसने बादशाह की बात को मंजूर कर लिया। युवक मुकुन्ददास को महारानी महामाया तथा दूसरे लोग बहुत प्यार करते थे। उसके शौर्य पर उन्हें गर्व था। सारे हिन्दुस्तान में उसके जोड़ का दूसरा ताकतवर कोई नहीं था। इधर महाराज स्वीकृति दे चुके थे। अब सिवाय सिंह के साथ लड़ाई का दूसरा उपाय नहीं था।

आगरे और दिल्ली में मुनादी कर दी गयी कि फलां तारीख को जोधपुर के मुकुन्ददास कुम्पावत के साथ बादशाह के बब्बर शेर की कुश्ती होगी।

कुश्ती के दिन आगरे के किले के चारों तरफ़ हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गये। हिन्दू सहमे हुए और दुःखी थे जबकि ज्यादातर मुसलमान खुश थे।

बादशाह और शाहजादे किले के ऊपर के बरामदे में बैठे थे। झालर के पीछे बेगमें और शाहजादियाँ थीं। खाई के चारों तरफ जनता की बहुत बड़ी भीड़ थी, जैसी आगरे में आजतक नहीं देखी गयी थी।

जब मुकुन्ददास कटार-तलवार से लैस होकर किले की खायी में आया तो लोग उसकी निर्भयता को देखकर चकित रह गये। आसन्न मृत्यु को सामने देखकर भी वह वीर युवक निडर होकर सर ऊँचा किये, मस्त हाथी की चाल से आ रहा था। शेर को कई दिनों से भूखा रखा गया था, उसका पिंजरा खायी में लाया गया। वह जोर-जोर से दहाड़ रहा था। मुकुन्ददास पिंजरे के पास पहुँचा। इतने में शाहजादे औरंगजेब ने कहा कि "हमारा शेर निहत्था है जबकि आपके शेर के पास तलवार-कटार है। यह

लड़ाईं के कानून के खिलाफ़ है। बहादुरी तो इसमें है कि मुकुन्ददास भी बिना हथियारों से लड़े।"

महाराज ने इशारा किया और कुम्पावत ने अपनी तलवार-कटार अलग फेंक दी। पिंजरे का फाटक खोला जा चुका था, लोग भयभीत होकर एक घिनौने दृश्य को देखने की तैयारी में थे।

मुकुन्ददास ताल ठोक कर पिंजरे के सामने खड़ा शेर को ललकार रहा था। उसकी आँखों में अंगारों की सी चमक थी। बड़े जोर से दहाड़ता हुआ शेर बाहर आया। लेकिन मुकुन्ददास ने हिम्मत नहीं हारी। जल्दी से उसके दोनों पंजे पकड़ कर पिंजरे में फेंक दिया। संयोग से शेर का सर लोहे की मोटी छड़ों से भिड़ा और वह थोड़ी देर के लिए संज्ञाहीन-सा हो गया। इसके बाद तो कई बार मुकुन्ददास ने शेर को बाहर आने के लिए ललकारा, परन्तु वह तो गीदड़ की तरह एक तरफ दुबककर बैठ गया।

बादशाह को इसमें अपनी तौहीन लगी। उसने अपने आदमियों को शेर को बाहर निकालने के लिए हुक्म दिया परन्तु किसी तरह भी वह पिंजरे से नहीं निकला।

जनता जोर-जोर से वीर मुकुन्ददास की जय ध्वनि करने लगी। लोगों का रुख देखकर बादशाह ने कुश्ती खत्म करने का हुक्म दिया।

मुकुन्ददास को पास बुलाकर अपने गले की मोतियों का हार पहनाया। दूसरे दिन दरबार में घोषणा की कि "महाराज जसवंत सिंह, आपका शेर वाकई में बहुत बहादुर है—सल्तनत को ऐसे जवां मर्दों पर फ़क्र है। हम इसे 'नाहरसिंह' का खिताब देते हैं। जसवन्त सिंह को अंदेशा हो गया कि यद्यपि इस बार तो बचाव हो गया, परन्तु कभी-न-कभी मुकुन्ददास का औरंगजेब धोखे से खून करा देगा।

थोड़े दिनों बाद उसे वापस जोधपुर भेज दिया गया।

●

जगतसेठ हीरानन्द
गरीब से करोड़पति

•

सन् १६५२ को घटना है, नागौर से हीरानन्द नाम का एक ओसवाल युवक वहाँ के जैन यती के पास जाकर परदेश जाने का मुहूर्त्त पूछने गया।

यतीजी ने पंचाग देखकर बताया कि तुम इसी समय पूर्व दिशा की ओर चले जाओ, ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी गरीवी मिट जायगी, वहुत वड़े व्यक्ति हो जाओगे।

युवक विना घर वालों को सूचना दिये ही, लम्वी यात्रा पर रवाना हो गया। थोड़ी दूर जाने पर उसे रास्ते में एक काला सर्प फण उठाये मिला। डरकर वापस यतीजी के पास आया और सारी घटना वतायी। उन्होंने कहा कि होते तो तुम छत्र-पति, परन्तु खैर, अभी भी धनपति वनने का सुयोग तो है ही, भगवान का नाम लेकर तुरन्त रवाना हो जाओ। तुम्हारे घर वालों को मैं सूचना दे दूँगा।

वीहड़ रास्ते, चोर-डाकूओं का डर, पास में सम्वल नहीं, फिर भी भगवान की कृपा से पन्द्रह दिनों में सही-सलामत आगरे पहुँच गया। शाहजहाँ वादशाह का राज्य था। आगरे की उन दिनों विश्व में सबसे सम्पन्न शहरों में गिनती थी।

यद्यपि हीरानन्द की वहुत पढ़ायी तो नहीं हुई थी, परन्तु वह गणित में होशियार था, मेहनती और ईमानदार था, देखने में वहुत सुन्दर भी था। उसे एक मोदीखाने की दूकान पर तीन रुपये महीने में नौकरी मिल गयी।

सस्ती का जमाना था। एक रुपये के पाँच मन गेहूँ और पाँच सेर घी मिलता था। एक रुपये में वहाँ का खर्च चलाकर दो रुपये महीना नागौर भेजने लगा। घर में खुशहाली हो गयी। वहाँ उसकी माता, पिता और पत्नी तथा एक पुत्र था।

उस दूकान के ग्राहकों में कुछ मुसलमान सरकारी अधिकारी भी थे। वे सव हीरानन्द के व्यवहार से वहुत खुश थे। उनमें से मीरजुमला नाम के एक हाकिम की पटने वदली हुई तो वह हीरानन्द को अपने साथ ले गया और वहाँ उसे एक दूकान करा दी। समय पाकर मीर जुमला ऊँचे पद पर पहुँचता गया और उसके साथ ही हीरानन्द साह की दूकानों का कारवार भी वढ़ने लगा।

पटना उन दिनों वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नगर था। यहाँ से शोरा, शक्कर, लाह, कस्तूरी, अफीम और रंगीन छींटें दूसरे मुल्कों को जाती थीं। दूसरे मूल्कों से सव तरह से मसाले तथा अन्य प्रकार की वहुत सी चीजें आयात होती थीं। कलकत्ता उस समय वस रहा था। औरंगजेव के पोते अजीमुशन ने केवल १४,०००) में सूतानट्टी गोविन्दपुर और कलकत्ता अंग्रेजों को वेच दिया था। परन्तु पूर्व के वड़े शहरों में चिन्सुरा, हुगली, राजमहल, ढाका और पटना की गिनती होती थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पटना में शाखा खोली और उन्होंने सेठ हीरानन्द को अपना वेनियन नियुक्त किया। उस समय यह कम्पनी साधारण स्थिति में थी, हीरानंद मौके-वेमौके इसे रुपया भी ऊँचे व्याज पर उधार देता था। इस प्रकार सन् १६८५तक तक के ३३ वर्षों में गरीवी से ऊँचा उठकर बीस-तीस लाख का आदमी हो गया था। चारों तरफ उसकी इज्जत हो गयी—विहार के सिवाय वंगाल के राजमहल और ढाका में भी शाखायें खुल गयीं। उस समय के वीस-तीस लाख आज के वीस-तीस करोड़ के बरावर हैं, क्योंकि वस्तुओं के भावों में एक और सौ का अनुपात था।

मीरजुमला के बाद शाइस्ता खां और औरंगजेब का वेटा मोहम्मद आजम नाजिम हुए, परन्तु हीरानन्द उन सबका विश्वासपात्र वना रहा और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती रही। अंग्रेजों का कोई काम अटक जाता था, नाजिम से सिफारिश करानी होती तो वे सेठ हीरानन्द के पास आकर खुशामद करते।

१६८५ से लेकर १७११ तक के २६ वर्षों में साह घराना करोड़पति हो गया। हीरानन्द के सात पुत्र और एक पुत्री हुई। उसने, विहार, वंगाल और राजस्थान में अनेक प्रकार के धर्म-स्थानों का निर्माण कराया। व्यस्त रहते हुए भी जन्मभूमि भूली नहीं। वरावर वहाँ वे आते-जाते रहते थे। मारवाड़ से वहुत से युवकों को लाकर पटना और राजमहल में वसाया। उन्हें हर प्रकार की सहायता दी।

६० वर्ष पहले वह २० वर्ष की आयु में, नागौर से पैदल चलकर आगरा पहुँचा था। रास्ते में कुछ मजदूरी करके आगे वढ़ता गया था। उसके जीवन में ही ५० वर्ष राज्य करके औरंगजेव मर गया। फिर उसका बड़ा पुत्र मुअज्जम वहादुर शाह के नाम सेदिल्ली के तख्त पर वैठा। यद्यपि मुग़ल सल्तनत का सितारा फीका होता जा रहा था, फिर भी आज की कीमत में ३०० करोड़ का तख्त ताऊस सिंहासन और अमूल्य कोहिनूर हीरा तो मुगलों के पास था ही, सालाना आय भी ३० करोड़ के लगभग थी। हिन्दुओं पर जजिया लगा हुआ था। बंगाल, बिहार के वहुत से गरीव हिन्दुओं का कर सेठ हीरानन्द की कोठी से दिया जाता रहा।

सन् १६९६ में उड़ीसा के अफगानों ने और मेदनीपुर के जमींदार शोभासिंह ने मिलकर बड़ी वगावत की थी। औरंगजेव पिछले १५ वर्षों से दक्षिण में उलझा

हुआ था। उत्तर भारत में सल्तनत कमजोर हो गयी थी। ऐसे संकट के समय में सेठ हीरानन्द ने बिहार के नाजिम बादशाह के पोते अजीमुशन को बड़ी मदद दी। दुर्भाग्य से वह दिल्ली के तख्त पर नहीं बैठ सका, वरना हीरानन्द को जगतसेठ की पदवी मिल जाती, फिर भी लोग उन्हें जगतसेठ कहने लगे थे।

सन् १७११ में ८७ वर्ष की लम्बी आयु पाकर सेठ हीरानन्द ने इहलीला समाप्त की। उस समय तक उनका घराना बंगाल, और बिहार प्रांत में प्रसिद्ध हो चुका था। वे स्वयं कारबार से अलग होकर भगवत्-भजन में लगे थे—विभिन्न शाखाओं का काम उनके ७ लड़के सम्हालते थे।

राजसंन्यासी दुर्गादास

राठौड़ दुर्गादास युवावस्था में बहुत सुन्दर और स्वस्थ था। कुछ वर्षों तक औरंगजेब के दरबार में था। बादशाह की प्रिय उदयपुरी बेगम ने उसे कई बार वहाँ देखा था। मन-ही-मन चाहने भी लगी थी। बहुत वर्षों बाद अनायास ही एक मौका आ गया।

बागी शाहजादा अकबर को लेकर जब वह पूना में शम्भाजी के पास गया तो वहाँ कुछ दिनों तक ठहर गया था। लगातार के युद्धों से थका हुआ था, आराम कर रहा था।

जिस दिन मारवाड़ लौट रहा था, उसके पहले एक दिन रात में उसे एक स्त्री के चिल्लाने की आवाज सुनायी दी—तलवार लेकर बाहर निकला तो देखा शम्भाजी शराब के नशे में चूर होकर एक बालिका को निर्वस्त्र कर रहा है और वह चिल्ला रही है।

"शम्भाजी, तुम इस तरह शिवाजी महाराज के उज्ज्वल नाम में कालिख लगा रहे हो, तुम्हें शर्म आनी चाहिये।"

दोनों की बातचीत बढ़कर झगड़े में बदल गयीं। युवक शम्भाजी को दुर्गादास ने धर दबोचा, परन्तु जान से नहीं मारा, चेतावनी देकर छोड़ दिया। आवाजें सुनकर सिपाही आ गये और शम्भाजी के हुक्म से दुर्गादास को कैद कर लिया।

दूसरे दिन दुर्गादास बेड़ियों में जकड़ा हुआ दिल्ली भेजा जा रहा था, जाते समय उसने श्राप दिया कि अगर मैंने जीवन में मन-वचन-कर्म से कोई पाप नहीं किया है तो यह भविष्यवाणी करता हूँ कि तुम्हारी औरंगजेब के हाथ से घिनौनी मौत होगी।

दिल्ली के लाल किले में हथकड़ी-बेड़ियों से लैस दुर्गादास को बादशाह के सामने हाजिर किया गया। औरंगजेब उससे नाराज तो बहुत था, परन्तु उसकी स्वामिभक्ति और बहादुरी के कारण मन-ही-मन आदर भी करता था।

"दुर्गादास, तुमने सल्तनत के हुक्कामों को बहुत तंग किया है, शाही चौकियों को लूटा है, आग लगा दी है, शाहजादे अकबर को बागी बनाने की कोशिश की, बताओ तुम्हें क्या सजा दी जाय ?

"बादशाह सलामत, मैंने जो कुछ भी किया अपने महाराज और वतन की वफा-

दारी के लिए किया। आपके हुक्काम हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे थे, मन्दिरों को तोड़ रहे थे, बहिन-बेटियों की अस्मत लूट रहे थे।"

पहरेदारों को हुक्म हुआ कि उसको किले के नीचे के तहखाने में बन्द कर दिया जाय।

जब बादशाह सलामत महल में गये तो उनकी पोती (शाहजादे अकबर की लड़की) ने कहा कि "दादाजान, यह आवाज तो मेरे बाबा की सी थी, क्या वे यहाँ आये हैं ?"

"बेटी तेरे सामने ही तो दुर्गादास खड़ा था, तुम उनके यहाँ दस वर्ष रही—क्या उसे पहचानती भी नहीं ?"

"नहीं दादा हजूर, वे हमेशा मुझे सख्त परदे में रखते थे—कुरानशरीफ पढ़ाने के लिए एक मुसलमान आलिम फाजिल मामानी को रखा था। अगर कभी बात करनी होती तो उसी के मार्फत करते थे।"

औरंगजेब को ताज्जुब हो रहा था कि इतनी परी सी सुन्दर युवती को अपने पास इतने वर्षों तक रखकर न तो कभी उसके मजहब बदलने की सोची और न किसी राजपूत शाहजादे से शादी करने की। मैंने इसका गाँव जला दिया, सैकड़ों मन्दिर तोड़ दिये, परन्तु ऐसा मौका हाथ में आने पर भी इसने छोड़ दिया, कुरान-शरीफ की पढ़ाई करायी। अजब किस्म का इन्सान है यह दुर्गादास। परन्तु औरंगजेब इन जज्बातों में यकीन करने वाला नहीं था। दुर्गादास का मारवाड़ में ही नहीं, बल्कि सारे राजस्थान में सुयश फैल रहा था। वह उसे खत्म कर देना चाहता था। अब वह उसकी कैद में था। ऐसा मौका फिर नहीं आने का। यह सोचकर अपने सरदारों से दरबारे खास में उसे कत्ल करने की योजना बना रहा था।

संयोग से उदयपुरी बेगम पर्दे में बैठी हुई सारी बातें सुन रही थी। सोचा दो-एक रोज में दुर्गादास को फाँसी होने वाली है, क्यों नहीं आज रात में जाकर एक बार उससे मिलूँ। खूब बन-ठनकर रात के १२ बजे तहखाने की तरफ चली। संयोग से औरंगजेब जग गया, वह अब्वल दर्जे का शक्की तो था ही। थोड़े दिनों पहले ही शाहजादी जेबुन्निसा का वाकया हो चुका था। वह छिपकर बेगम के पीछे चलने लगा।

बेगम कैदखाने के फाटक पर पहुँची। मुगलों के कैदखाने के पहरेदार गूंगे व बहरे हब्शी होते थे। बेगम ने पंजा दिखाकर चाभी माँगी और फाटक खोलकर भीतर चली गयी। दुर्गादास को पता लग गया था कि दो-एक दिनों में उसे कत्ल किया जायगा। उसे किशोर अजीत सिंह को जोधपुर राज्य पर बैठाने की चिन्ता थी। १७ वर्षों से वहाँ मुगलों की सल्तनत थी, उसपर मुसलमान फौजदार राज्य करता था। उसके कारनामों से प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। हिन्दुओं पर जजिया कर लग चुका था। कुछ राजपूत तथा अन्य जाति वाले मुसलमान बन गये थे।

बेगम ने पुकारा "दुर्गादासजी, जागते हैं क्या ?"

"मलकएआलम, जिसको जल्द ही फाँसी होने वाली हो, वह भला निश्चितता की नींद कैसे सो सकता है ? परन्तु आप इस समय यहाँ कैदखाने में ?"

"आपको छुड़ाने आयी हूँ। आप चाहें तो इसी समय हम दोनों यहाँ से दूर चले जा सकते हैं। बादशाह की फिक्र मत करो, वह चाहे कितना ही शक्की हो, मेरे वश में है। मैं दिलोजान से आप पर फिदा हूँ। पन्द्रह वर्ष पहले आपको देखा था, तभी से मन में मिलने की तमन्ना लिये हुए हूँ।"

"नहीं मल्लिका, मेरी पत्नी है, पुत्र है, भरापूरा परिवार है। आप मेरी छोटी बहिन या बेटी की तरह हैं, आप ऐसी बातें न करें।"

बादशाह की बुढ़ौती में चहेती उदयपुरी बेगम पैर पटकती फुँफकारती हुई कहने लगी कि "आप अजीब शख्स हैं, तभी तो दुश्मन की पोती जवान शाहजादी आपके देहात के गाँव में इतने वर्षों तक रहकर अछूती चली आयी और अब जबकि आपको जिन्दगी और मौत के चुनाव का मौका मिल रहा है तो आप जिन्दगी की बहार छोड़कर कुत्ते की मौत मरना चाहते हैं।"

"बेटी ! दुर्गादास परायी स्त्री के बारे में माँ-बहिन या बेटी के सिवाय कुछ सोच ही नहीं सकता। मरना तो एक दिन है ही, चाहे कल मरूँ या दस-बीस वर्ष बाद।"

औरंगजेब ने सारी बातें सुन ली थीं। उसके मन में इस बेगम तथा उसके लड़के कामबक्श के लिए शुरू से कमजोरी थी। फिर भी ऐसी वारदात के बाद उसे दण्ड देना जरूरी हो गया था, मौके की तलाश में था।

संयोग से दूसरे दिन से ही कुछ ऐसे वारदात हो गये कि दुर्गादास की फाँसी टल गयी।

शम्भाजी को आगरे बुलाकर मार दिया गया। मराठे कुछ समय के लिए ठंढे पड़ गये। शाहजादा अकबर मक्का चला गया। तहव्वर खां अपने आप मर गया। औरंगजेब बहुत खुश था कि एक साथ ही इतने संकट टल गये।

सोचा, अब दिखाने के लिए दुर्गादास से मित्रता कर लेनी ठीक रहेगी। उसे दूसरे दिन दरबार में बुलाकर खिल्लत, बख्शी, लूनवा की जागीर वापस दे दी।

वह राजपूताना आकर मेड़तिया के ठाकुर श्यामसिंह के पास जाकर ठहर गया। इधर औरंगजेब ने उसे कत्ल कर देने के लिए एक बड़ी फौज पीछे लगायी।

दुर्गादास के पास उस समय एक हजार जवान थे, जबकि मुगलों की २० हजार की बड़ी सेना, परन्तु इन्हें देवारी की घाटी का सहारा मिल गया। मुगल सेना अनजान घाटी में घुस गई। राजपूतों ने उन्हें चारों तरफ से घेर लिया। पहाड़ों के ऊपर से विषैले तीर और पत्थर आकने लगे। मुगल फौज बहुत से सिपाही खोकर दिल्ली की तरफ भाग गई। देवारी से जोधपुर आकर मेवाड़ के पहाड़ों से राजा अजीत सिंह को

बुला लिया। १८ वर्ष बाद आज उसकी महाराज जसवंतसिंह के सामने की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो रही थी।

मेवाड़ के राणा जयसिंह ने अपनी भतीजी का विवाह अजीतसिंह से कर दिया था—नयी रानी भी साथ में थी।

सन् १६९८ में जोधपुर में बड़ा दरबार हुआ। सारे राजस्थान के राजा और जागीरदार भेंट लेकर आये, यहाँ तक कि औरंगजेब ने भी एक जड़ाऊ तलवार और मन्सब की सनद भेजी। मरते समय जसवंत सिंह ने दुर्गादास को एक डब्बा दिया था—उसे सबके सामने खोला गया। उसमें एक रत्न जड़ित मुकुट और कटार थी। मुकुट नये महाराज के सर पर रखकर कटार उनकी कमर में बाँध दी गयी।

"महाराज, आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी, मेरे हर्ष का पारावार नहीं है। भगवान ने मेरी तलवार और पगड़ी की लाज रख ली। अब मैं अपना अन्तिम समय सुधारने के लिए आपसे छुट्टी लेता हूँ।" इतना कहकर उसने अपनी राजसी पोशाक उतार दी और साथ की झोली में से गेरुए कपड़े निकाल कर पहन लिये। सारी सभा ने नारा लगाया—"राजसंन्यासी वीर दुर्गादास की जय।"

सभी की आँखें गीली थीं। वृद्ध संन्यासी कमंडल हाथ में लिये धीरे-धीरे दरबार से बाहर जा रहा था।

●

कुँवर हरदौल

•

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि किसी प्रकार के लालच या यंत्रणा के भय से बहुत से समर्थ लोगों ने अपनी बहन-बेटियों का मुगलों के साथ विवाह कर दिया या धर्म-परिवर्तन कर लिया।

परंतु इतिहास में बहुत से ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ सब तरह के कष्ट और यातनाओं के बावजूद कुछ महापुरुषों ने अद्भुत बलिदान किया है। इस संदर्भ में सिखों के गुरु अर्जुन देव और गुरु गोविंद सिंह के दो बच्चों के बलिदान का उदाहरण दिया जा सकता है।

हम यहाँ बुंदेलखंड की एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करेंगे जो अपने आप-में अनुपम और शायद अकेली है।

बचपन से ही बुंदेलखंड के महाराजा छत्रसाल के बारे में सुनता आ रहा था। महाकवि भूषण का छत्रसाल शतक मध्यमा के कोर्स में पढ़ा था। छत्रपति शिवाजी और मरहट्टों के इतिहास में भी उनका कई स्थानों पर वर्णन है।

संयोग से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और मैं, दोनों नयी दिल्ली में लम्बे समय तक पड़ोसी रहे। उन्होंने कई बार बुंदेलखंड देखने का निमंत्रण दिया। ओरछा, झाँसी और बेतवा नदी के बारे में इतनी कविताएँ सुन चुका था कि उन स्थानों से बिना देखे ही जान-पहिचान हो गयी थी। इसी संदर्भ में कुँवर हरदौल के बारे में भी उनसे एक कविता सुनी थी।

१९६४ के अगस्त में एक दिन मित्रवर गंगाशरणजी सिन्हा (संसद-सदस्य) के साथ चिरगाँव जाकर 'दद्दा' (यह राष्ट्रकवि का बोल-चाल का नाम था) के यहाँ हाजिर हो गया। उनके परिवार के आतिथ्य-सत्कार के बारे में मित्रों से पहले ही सुन रखा था। हमें दद्दा के साथ-साथ उनके अनुज सियारामशरणजी तथा अन्य घर के लोग घेरे ही रहते।

मैंने कहा—आपकी कविता तो पढ़ते और सुनते ही रहते हैं, झाँसी भी देखी हुई है। हमें तो आप वीरसिंहदेव की जन्मभूमि ओरछा दिखा दें। वहीं दो गोते बेतवा में लगाकर कुछ पुण्य अर्जन कर लेंगे। अगर अभी तक मौजूद हैं तो कविवर केशोदास और वीरसिंहदेव की प्रेयसी कवयित्री 'राय प्रवीण' के निवास-स्थान भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा।

यद्यपि दद्दा ७०-७२ वर्ष के थे, परन्तु उनमें वालकों की सी सरलता और चपलता थी। दूसरे दिन सुबह का प्रोग्राम रखा गया। झाँसी से अपने मित्र वृन्दावनलालजी वर्मा को ले लिया। वर्माजी का इस भूमि का चप्पा-चप्पा छाना हुआ था। 'झाँसी की रानी', 'गढ़कुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' उन्होंने बहुत खोजवीन के वाद लिखी थी।

हाँ, तो हमलोग छः व्यक्ति दद्दा की कार में चिरगाँव से रवाना हुए। साथ में खाने-पीने का पूरा सामान रख लिया। वर्माजी किसी समय प्रसिद्ध शिकारी थे। वन-जंगल में शायद कोई हिंसक पशु मिल जाय, इसलिए अपनी दोनाली वंदूक साथ में रख ली। दद्दा उन्हें धमका कर कहने लगे कि "दुष्ट, अब बुढ़ापे में तो यह हत्याकाण्ड वंद करो।" वर्माजी सरल-भाव से हँसने लगे। हम जब ओरछा पहुँचे, दोपहर हो गयी थी। सबसे पहले नदी के किनारे एक बड़े से खँडहर में गये, किसी समय यह अठपहलू महल रहा होगा।

कहते हैं, राय प्रवीण यहीं वैठकर संगीत-साधना किया करती थी। शायद पास में ही किसी तख्त पर वैठे हुए वीरसिंहदेव उसकी रूप-सुधा का पान करते हुए राग-रागिनी सुना करते होंगे। ऐसी भी किंवदंती है कि उसकी सुरीली तान को सुनकर अनेक प्रकार के पशु-पक्षी आकर वहाँ इकट्ठे हो जाते थे।

यहाँ से हमलोग महाराज के महल में गये। इसमें ५२ कक्ष हैं, जो सन् १६०६ में वीरसिंहदेव ने वनवाये थे। अब तो यह एक वड़ा-सा खँडहर रह गया है; फिर भी वड़े-वड़े सहन, कमरे और वीथिकाएँ देखकर मन में अतीत के इतिहास की परतें उभड़ आती हैं।

महल के विभिन्न कक्षों को देखते हुए हमें शाम हो गयी। कुछ थकावट भी आ गयी। भूख तो लग ही गयी थी। हाथ-मुँह धोकर डटकर नाश्ता किया। पास में ही वेतवा वह रही थी, या ऐसा कहना चाहिए कि वर्षा के कारण उफन रही थी। यद्यपि मैं तैरना अच्छी तरह जानता था। कई वार काशी में गंगा पार कर चुका हूँ, तथापि दद्दा की मनाही और अनजान जगह के कारण नदी में नहीं उतरा।

महल देखकर हमलोग फूलवाग में आ गये। किसी समय यह बहुत ही सुन्दर उद्यान रहा होगा। अब तो एक दुःखद स्मृति मात्र रह गया है।

यहीं हमने कुँवर हरदौल का चबूतरा देखा। दद्दा कुछ पूजा-सामग्री साथ लाये थे। हमने वह सब श्रद्धा से चढ़ाकर चबूतरे की परिक्रमा की।

वहीं वैठकर वर्माजी ने उस पवित्र प्रेम और वलिदान की कहानी को विस्तार से सुनाया। बीच-बीच में कुछ गीत और कविता भी सुनाते रहे, जिन्हें आज तक बुंदेलखंड के घरों में लड़की के विवाह के समय गाया जाता है।

हरदौल का जन्म सन् १६०८ में ओरछा में हुआ था। महाराज वीरसिंहदेव के वारह

पुत्र थे। जुझार सिंह सबसे बड़ा था और हरदौल १०वाँ पुत्र था। जब महाराज का देहांत हुआ, हरदौल केवल सात वर्ष का बालक था। जुझार सिंह का उन्हीं दिनों विवाह हुआ था। महारानी ने सती होते समय हरदौल को १४ वर्ष की नव-वधू के गोद में देते हुए कहा—"आज से तुम्हीं इस बालक की मां हो—यह मुझे प्राणों से प्यारा है। अगर इसे किसी तरह का कष्ट होगा तो उसकी पीड़ा मुझे परलोक में होगी। अगर कटु-वचन या अन्य किसी कारण से इसका जी दुखाया, तो तुम्हें मेरे आराध्यदेव श्रीराम की सौगंध है।"

उन दिनों शाहजहाँ का शासन था। मुगल बादशाहों में अकबर को छोड़कर सभी ने हिन्दुओं पर नाना प्रकार के कम-बेसी अत्याचार किये। मंदिर तोड़ दिये गये, जजिया कर लगाया गया तथा जबरन या लोभ-लालच देकर लोगों को मुसलमान बनाया गया।

हरदौल यद्यपि १९ वर्ष का युवक था, फिर भी उसके मन में हिंदुओं पर आये दिन के अत्याचारों का पुरजोर असर पड़ा। समय आने पर बदला लेने की भावना प्रबल होती गयी। उसने कुछ युवकों की टोली बनायी। वे नित्य घुड़सवारी और शस्त्र-विद्या के साथ-साथ फूलबाग में कुश्ती-कसरत सीखने लगे।

वे सब हफ्ते में १-२ बार गुप्त मंत्रणा भी करते कि किस प्रकार यवनों के अत्याचार से हिंदू-धर्म की रक्षा की जाय।

शाहजहाँ के दरबार में ये खबरें बढ़-चढ़कर पहुँचीं। उसने राजा जुझार सिंह को ओरछा से आगरा बुलाकर अपने पास जमानत के तौर पर रख लिया।

उन दिनों मेंहदी हुसेन नाम का एक हिंदू-धर्म-द्वेषी और क्रूर पठान बुंदेलखंड का नाजिम था।

आये दिन वह मंदिरों को तोड़ता और नाना प्रकार के अत्याचार हिन्दुओं पर करता रहता। मनचाहे जिस युवती को जबरन अपने हरम में बुला लेता।

जब उसके अत्याचार से लोग त्रस्त हो उठे तो एक दिन भाभी के पास जाकर हर-दौल कहने लगा—"भाभी, अब ये अत्याचार नहीं सहे जाते। तुम्हारे चरणों की सौगंध खाकर कहता हूँ कि अगर असल बुंदेला हूँ तो उस अत्याचारी यवन को मार कर ही तुम्हें मुँह दिखाऊँगा।"

उसकी बात सुनकर माता-समान भाभी डर गयी। सोचने लगी—कहाँ तो यह बीस वर्ष का युवक और कहाँ हाथी के समान बलवान और सर्वशक्तिमान पठान सरदार।

हरदौल ने मेंहदी हुसेन को उसकी निजामत में जाकर ललकारा। पठान यद्यपि ऐय्याश और अफीमची था तथापि बहादुर और युद्ध-विशारद था। इसके बावजूद

वह वीर हरदौल के वार को नहीं झेल सका; थोड़ी देर में ही वह घायल होकर धराशायी हो गया।

अतिरंजित होकर ये खबरें आगरा पहुँचीं। ओरछा से भागकर गये हुए पठानों ने कहा कि वहाँ के लोग हरदौल के बहकावे में आकर बाग़ी बनते जा रहे हैं। वैसे भी बुंदेले मरने-मारने में चित्तौड़ के सिसोदियों से कम नहीं हैं, इसलिए सीधी चढ़ाई न करके कूटनीति से काम लेना चाहिए।

इधर बुंदेलखंड में कुँवर की वीरता के गीत गाये जाने लगे। इससे वहाँ के पुराने सरदारों के मन में ईर्ष्या-भाव जग गया। ये खबरें भी गुप्तचरों द्वारा आगरे पहुँचीं।

बादशाह ने ओरछा के मंत्री बहादुर सिंह को आगरे बुलाया। उसे नाना प्रकार के प्रलोभन देकर विश्वासघात करने पर तैयार कर लिया। हरदौल के विरुद्ध एक घृणित योजना बनी। बारी-बारी से कुछ लोग राजा जुझार सिंह के पास आगरा जाकर रानी और कुँवर हरदौल के बारे में कुत्सित बातें करते।

बड़ा भाई जुझार सिंह भिन्न प्रकार का था। आगरे में रहकर मौज, शौक और ऐय्याशी में पड़ गया। छोटे भाई की वीरता के लगातार बखान से वह मन ही मन जलने लगा था। दरबार में जाकर अर्ज किया कि मुझे ओरछा जाने की मंजूरी दी जाय, जैसे भी होगा अमन-चैन कायम कर दूँगा।

एक दिन अचानक बिना सूचना दिये वह ओरछा पहुँचा। सीधा महल में गया— देखा, देवर-भाभी आपस में हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं। वैसे दोनों में माँ-बेटे का संबंध था, परन्तु ईर्ष्यालु व्यक्ति को तो बुरा-ही-बुरा दीखता है।

रानी और कुँवर हर्षविभोर हो गये, दोनों ने उठकर उसके पाँव छुए। उन्होंने इस प्रकार बिना सूचना दिये आने का कारण पूछा। राजा ने न तो राजी-खुशी का हाल पूछा और न कोई बातचीत की। रानी ने समझा कि शायद बादशाह नाजिम के मरने से नाराज हो गया है। जब वह विस्तार से सारी बातें बताने लगी तो राजा ने हरदौल को बाहर भेज दिया। कहने लगा—"रानी, तुमने मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रखा। सारी दुनिया में तुम्हारे गुप्त-प्रेम की चर्चा फैली हुई है। दिखाने के लिए माँ-बेटे का संबंध रखती रही और छिपकर प्रणय-लीला।"

रानी तो सकते में आ गयी। रोती हुई कहने लगी—

जननी मरी तब सौंप्यो मम गोद लाल,
पाल पाल पलना में कीन्हों जस धौल है।

ईश की दुहाई तुम चरनन सपथ नाथ,
पुत्र के समान मोरे लाला हरदौल है।

परंतु पापी के मन में परतीत कहाँ। कहने लगा—"यदि तुम वास्तव में पतिव्रता हो तो कल सुबह कुँवर को बुलाकर अपने हाथ से विष-पान कराओ। अगर यह नहीं करोगी तो मैं माता गणेश कुँवर की सौगंध खाकर कहता हूँ कि इस तलवार से अपना शीश काट लूँगा। फिर भले ही तुम दोनों उम्र भर काला मुँह करते रहना।"

रानी ने रोते हुए कहा कि "आपको उस पुण्यात्मा सती की सौगंध खाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अपना और पुत्र-समान देवर का नाम उज्ज्वल रखने के लिए हम दोनों कल सुबह विष-पान करेंगे।"

दूसरे दिन सुबह रानी ने कुँवर को कलेवा के लिए महल में बुलाया। वहाँ जाकर देखा कि मातृ-समान भाभी बिलख-बिलखकर बिसूर रही है। दूध का कटोरा देती हुई कहने लगी—"बेटा, मैं जानती हूँ कि फौज-पल्टन सब तुम्हारे साथ है। किसी की मजाल नहीं कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके। परंतु मैंने सब तरह से सोच-विचार कर देख लिया है कि हमें कुल का नाम उज्ज्वल रखने के लिए आत्मबलिदान करना ही होगा। आज तुम और मैं दोनों एक साथ विष-पान करेंगे। यहाँ तो पानी-धरती है, परंतु स्वर्ग में हम माँ-बेटे को कोई अलग नहीं कर सकेगा।

जौन हाथ रोज लाल गोद में खिलाया तुम्हें,
आज सोई हाथ दूध गरल का पिलाती हूँ।

हरदौल को अशुभ का आभास तो पिछले दो दिनों में हो ही गया था, परंतु उसने हिम्मत नहीं हारी। भाभी को सांत्वना देते हुए कहा—

सपथ हमारी है माता जहर खाइयो ना,
खात मैं अकेलो तुम परजा समझाइयो।
ओरछा की भूमि हमें स्वर्ग के समान लागे,
बेतवा किनारे पर चौतरा बनाइयो।

इतना कहकर कटोरे को मुँह से लगाकर सारा दूध पी लिया।

थोड़ी देर में ही जो स्वस्थ और सुन्दर शरीर था, वह विष से काला पड़कर मुरझा गया। सारे ओरछा में बिजली की तरह खबर फैल गयी। नगरवासी शोक से छाती पीटने लगे। राजा को हत्यारा, कसाई, भ्रातृ-हंता कहकर कोसने लगे।

मनुष्य क्रोध के आवेश में आकर जघन्य कार्य कर बैठता है। परंतु आगे जाकर उसे भय और संताप भी कम नहीं होता। जुझार सिंह ने जब सुना कि प्रजा विद्रोह करने पर तुली हुई है तब रात में छिपकर थोड़े दिनों के लिए ओरछा से भाग गया।

आस-पास के गाँवों के हजारों स्त्री-पुरुष अर्थी के साथ श्मशान गये और रोते-विलखते हुए प्रिय कुँवर को श्रद्धांजलि दी ।

जिस स्थान पर दाह-संस्कार हुआ था, वहीं वह चबूतरा बना हुआ है । आज भी नित्य-प्रति सैंकड़ों स्त्री-पुरुष वहाँ दर्शन करने आते हैं । थोड़े से फूल और दूध चढ़ा जाते हैं । बुंदेली भाषा में एक गीत भी गाते रहते हैं—

लाला तोरे भले हैं लछारे नाम–
गाँवन गाँवन चौतरा देशन देशन नाम बुंदेला देशा के ।

जिस कटोरे में हरदौल ने विष-पान किया था, वह भी वहीं एक कक्ष में रखा हुआ है ।

●

सिंहगढ़ विजय

खड़े सिंहगढ़ के अजय, ये गर्वित कंगूर ।
शिव्वा बेटा जगत में, वृथा कहाया शूर ।।

ऊपर एक प्रसिद्ध मराठी दोहे का अनुवाद है जिसे माता जीजावाई ने शिवाजी से कहा था । अगर कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा कहता तो उसकी जीभ खींच ली जाती, परंतु यह तो देवीस्वरूपा माँ साहिवा ने स्वयं कहा था जो न केवल उनकी पूज्य जननी थी, वल्कि परामर्शदात्री और शिक्षिका थी ।

जंजीरा के वड़े अभियान से वे लौटे थे—थके हुए थे । जव माँ को प्रणाम करने गये तव उन्हें यह सुनना पड़ा । विजय-गर्व जाता रहा और चेहरे पर उदासी छा गयी ।

वात ऐसी हुई कि जीजावाई जव भवानी के मंदिर में पूजा करने जाती तो सामने सिंहगढ़ का ऊँचा किला दिखाई देता । कभी यह उनके पुत्र शिवाजी का था जो पुरंदर की संधि के कारण मुगलों को दे देना पड़ा था; इसलिए पिछले चार वर्षों से उनके मन में एक दु:खभरी टीस उठती रहती थी । वहुत वार शिवाजी के मन में उस किले को वापस लेने की वात उठती, लेकिन वे मौके की ताक में थे ।

औरंगजेव ने किले की रक्षा का भार एक अजेय राजपूत वीर उदयभानु को वड़ी फौज के साथ दे रखा था । किला इतना सुदृढ़ और सीधी चढ़ाई का था कि मनुष्य की तो वात ही क्या, साँप और गिलहरी भी उस पर नहीं चढ़ सकते थे ।

महाराज की वायीं आँख फड़क रही थी, अपशकुन भी हो रहे थे, परंतु माँ की इच्छा के आगे कोई चारा नहीं रह गया । उन्होंने अपने सर्वोच्च सेनापति और मित्र तानाजी मालसरे के गाँव सूचना भेजी कि वे सव काम छोड़कर तुरंत सिंहगढ़ का किला फतह करके आयें ।

उन्हीं दिनों तानाजी के इकलौते वेटे का विवाह था । सगे-संवंधी सव आये हुए थे, औरतें मंगलाचार के गीत गा रही थीं, शहनाई वज रही थी, ऐसे में महाराज का दूत यह समाचार लेकर पहुँचा ।

तानाजी उसी समय अपने एक हजार घुड़सवार वीरों को लेकर सिंहगढ़ जाने की तैयारी करने लगे । घर में उदासी छा गयी । पत्नी कहने लगी कि "आप विवाह के वाद

तुरंत चले जाइएगा। दो-चार दिनों की तो बात ही है, अगर बीच में जायेंगे तो आये हुए मेहमान अपना अपमान समझेंगे और विवाह का सारा उत्सव फीका पड़ जायगा।"

"बावली, महाराज की सेना की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। जब उन्होंने इस काम के लिए मुझे चुना है तो फिर मैं एक घड़ी भी नहीं ठहर सकता। तुम लोग सब काम सम्हालो। छोटा भैया है ही, मैं शीघ्र ही सिंहगढ़ विजय करके वापस आता हूँ।"

जब विदा की बेला आयी तो छोटा भाई सूर्याजी जिरह-बख्तर पहनकर पहले से ही तैयार था। इतने दिनों तक जिस अजेय किले को वापस लेने की हिम्मत महाराज स्वयं नहीं कर सके, वह आसानी से जीत लिया जायगा, यह बात उसे जँचती नहीं थी। सोचा—भाई साहब के जान की बहुत बड़ी कीमत है। वे मराठा फौज के सर्वोच्च सेनापति हैं। खतरे के समय मुझे उनके साथ रहना ही चाहिए। बहुत समझाने-बुझाने पर पैर पकड़कर रोने लगा, आखिर उसे साथ लेना ही पड़ा।

अँधेरी वर्षा की रात। अपना हाथ भी नहीं दिखाई देता था। परंतु रास्ते में चप्पा-चप्पा मराठा फौज का जाना हुआ था। मन में उत्साह था कि आज अपना गया हुआ किला वापस लेकर अपमान की कालिमा को मिटायेंगे।

सभी किले की ऊँची दीवारों के नीचे पहुँच गये, परंतु भीतर जाने का कोई उपाय नहीं था। अगर दस-बीस सिपाही भी पहुँच जायँ और किसी तरह किले का फाटक खोल सके तो फिर आमने-सामने युद्ध हो सकता है।

तानाजी के पास 'यशवंती' नाम की गोह (एक प्रकार की बड़ी छिपकली जो जमीन से चिपक जाती है) थी, जो उन्हें बेटी की तरह प्यारी थी उसे पुचकारकर किले की दीवार पर चढ़ने के लिए फेंका। शायद जानवरां को भी शुभ-अशुभ का अंदेशा रहता है। आज वह किसी प्रकार भी आगे नही बढ़ रही थी; बारंबार नीचे चली आती। तानाजी ने प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी, मेरी इज्जत का सवाल है। तुमने आज तक मेरे आदेशों का पालन किया है, मुझे इस संकट के समय में धोखा मत देना।"

इस बार गोह किले के ऊपर जाकर चिपक गयी। सबसे पहले ऊपर चढ़े स्वयं तानाजी।

सिपाहियों ने बहुत-कुछ आरजू-मिन्नत की कि ऊपर पहरेदारों का खतरा है, पहले हम जाकर आपको बुला लेंगे। परंतु मराठा सरदारों का यह नियम था कि संकट के समय वे हमेशा आगे रहते थे और यही कारण था कि सैनिक उनके लिए जान देने को तैयार रहते थे।

ऊपर जाकर मजबूती से एक महराब से रस्सा बाँध दिया गया और बहुत से मावले सैनिक बारी-बारी से किले में पहुँचने लगे।

किले के भीतर पहरे का पूरा बंदोवस्त था। बहुत सावधानी बरतने पर भी पहरेदारों को पता लग गया और उसी समय खतरे की घंटी बजी। चारों तरफ़ से राजपूत और मुगल-सैनिकों ने थोड़े से मराठों को घेर लिया।

दैत्य के समान शरीरवाला दुर्गाध्यक्ष उदयभानु राठौर भी अपनी बहुत बड़ी तलवार लेकर आ गया। उसके बल-पौरुष की सारे महाराष्ट्र में चर्चा थी।

तानाजी ने सोचा कि जब महाराज ने अफ़जल खाँ जैसे लम्बे-चौड़े राक्षस को मार गिराया तो क्यों न मैं इस धर्मद्रोही को मारकर यश हासिल करूँ।

दोनों वीर तलवारें लेकर भिड़ गये। बहुत देर तक दोनों लड़ते हुए थक गये। परंतु तानाजी तो जान की बाजी लगाकर लड़ रहा था। आखिर उदयभानु करारी चोट खाकर बेहोश होकर गिर गया।

उसे गिरते देखकर उसके अंगरक्षक ने पीछे से तानाजी पर वार करके उनका सिर काट लिया। दोनों एक साथ प्राणविहीन होकर गिरे। अपने समय के दो अद्वितीय वीर आस-पास लेटे हुए थे। अब उम्र भर का वैर-विरोध समाप्त हो गया।

सेनापति की मृत्यु की सूचना से बची हुई थोड़ी-सी मराठा फौज में भय समा गया। वे हथियार डालकर आत्मसमर्पण की सोच रहे थे कि सूर्याजी ने जोर से चिल्लाते हुए कहा—"वीरो, भैया तो वापस आने से रहे, अगर उनके प्रति तुम्हारी कुछ श्रद्धा रही हो तो आज-जैसा मौका फिर नहीं आयेगा। मरना तो दोनों तरह से है। क्योंकि हमारे नायक ने किले से नीचे उतरने की रस्सियों को काट दिया है; फिर कायर की मौत मर कर महाराज और भैया के नाम पर बट्टा मत लगाओ।"

थके हुए मराठों में नया जोश आ गया। बढ़-बढ़कर वार करने लगे। एक ही धुन थी कि किसी प्रकार किले के फाटक को खोलकर बाहर के बचे हुए सैनिकों को भीतर आने का मौका मिल जाय।

मुगल और राजपूत फौज भी अपने अजेय सेनापति की मौत को सुनकर डर गयी थी। वे मराठों की तलवार और भालों के सामने नहीं ठहर सके। फाटक खुल गया। बचे हुए पाँच सौ मराठा वीर हर हर महादेव कहते हुए भीतर आ गये। राजपूतों ने हिम्मत हारकर हथियार डाल दिये।

एक तेज घुड़सवार को महाराज को सूचना देने रायगढ़ भेजा गया। वे प्रतीक्षा कर रहे थे। सारा समाचार सुनकर उनकी आँखों में आँसू आ गये। सोचने लगे—'बहुत महँगी पड़ी यह जीत!'

माता के पास जाकर प्रणाम करके कहने लगे—"माँ साहिबा, गढ़ आला पण सिंह गेला।" अर्थात् किला आया, पर सिंह चला गया।

●

शाहजी-शिवाजी मिलन

"शिब्बा बेटा, आजकल शरीर अस्वस्थ रहता है। वैसे तुम्हारे साम्राज्य में मुझे सब तरह का आराम है। तीनों बहुएँ रात-दिन सेवा में रहती हैं, परंतु एक वार तुम्हारे पिताजी को देखने का मन होता है। ३२ वर्ष पहले उन्होंने हमारा त्याग किया था, उस समय तुम जन्मे भी नहीं थे। भवानी की दया से अब ५२ किलों के अधिपति हो, सारे महाराष्ट्र में तुम्हारी तूती बोलती है। एक वार वे आकर देखें तो सही कि १८ वर्ष पहले एक किशोर को पूने के छोटे से गाँव की जागीर दी थी, अब उसका न केवल बीजापुर बल्कि दिल्ली सल्तनत तक लोहा मानती है। उन्हें यह सब देखकर खुशी ही होगी।"

"माँ साहिबा, मैंने भी कई वार पिताजी को बुलाने की सोचा। परंतु जिन्होंने हमें एक प्रकार से त्याग दिया, ३२ वर्ष के लम्बे समय से सुध नहीं ली, १८ वर्ष पहले जब आप मुझे लेकर बंगलोर गईं उस समय भी आपको अपमानित होकर वापस आना पड़ा; वें सब बातें भुलायी नहीं जा सकतीं। बीजापुर से हमारी दुश्मनी है और वे वहाँ के सूबेदार हैं। इसलिए भी उनका यहाँ आना खतरे से खाली नहीं है। उनके साथ पठान और तुर्क जासूस भी आ सकते हैं।

"शिब्बा! तुम यह क्यों भूल जाते हो कि वे तुम्हारे पिता और मेरे आराध्य हैं। तुमने छोटे से जीवन में बहुत से खतरे उठाये हैं, फिर तुम्हें डर किस बात का है। दो महीने बाद होली का त्योहार है, जेजूरा के खंडोबा भगवान के उत्सव में उन्हें बुलाने के लिए निमंत्रण देकर सेनापति तानाजी को भेजो। जरूरत समझो तो साथ में शम्मा को भी भेज दो। मेरा मन कहता है कि वे अवश्य आवेंगे।"

फरवरी १६६१ की बात है, रायगढ़ के किले के फाटक में चार सुसज्जित आदिलशाही घुड़सवार आये। लोग समझ गये कि कई दिनों से जो चर्चा चल रही थी वह सफल हुई है। शाहजी महाराज जल्द ही राजगढ़ पधारेंगे। एक व्यक्ति ने कहा—"इन शत्रुओं के आदमियों का क्या भरोसा? यहाँ की सारी जानकारी बीजापुर में दे देंगे।" दूसरा कहने लगा—"जब मुगल बादशाह औरंगजेब का मामा शाइस्ता खाँ और बीजापुर के दैत्य के समान सेनापति अफ़जल खाँ को यहाँ मुँह की खानी पड़ी तो फिर हमें डर किस बात का है? हमारे महाराज को देवी भवानी का इष्ट है। देख लेना उनका बाल भी बाँका नहीं होगा।"

थोड़ी देर बाद किले के फाटकों पर तुरही बजने लगी, तोपें छूटने लगीं। लोग समझ गये कि महाराज के पिता शाहजी जल्द ही पधारेंगे। शिवाजी महाराज के मंत्री, सेनापति और सेठ-साहूकार स्वागत के लिए बाजे-गाजे के साथ गये। पिता-पुत्र के मिलने का स्थान जेजुरी में खंडोबा के मंदिर में निश्चित हुआ।

शाहजी सुदूर बंगलोर से सदल-बल आ रहे थे। रास्ते में जिन गाँवों से गुजरते, तोरन-वंदनवार सजे थे। लोग झुक कर जुहार करते। शिवाजी महाराज के साथ उनकी भी जय-जयकार करते।

इस प्रकार १५ दिनों में वे जेजुरी पहुँचे। वहाँ के सारे घरों में नया रंग किया गया, रास्ते में तोरण बने, स्त्री-पुरुष नये-नये कपड़े पहने अगवानी के लिए उमड़ पड़े। मंदिर के दरवाजे पर उन्हें हाथी पर से चाँदी की सीढ़ी लगाकर सम्मानपूर्वक प्रधान मंत्री नेताजी पालकर ने उतारा। वे मंदिर में गये, वहाँ जीजा माता उपस्थित थीं। किसी समय की युवती अब वृद्धा हो चुकी थीं, सलवटें पड़ गई थीं, परंतु चेहरा ओजपूर्ण था। महाराष्ट्र-मंडल के अधीश्वर की जननी और प्रजा की पूजनीया माँ साहिबा थीं।

३२ वर्षों के लम्बे समय के बाद पति से मिल रही थीं, अगर एकांत होता तो शिकवा-शिकायत भी करतीं, परंतु मंदिर में सैकड़ों विशिष्ट व्यक्ति मौजूद थे। झुक-कर पति के पैरों में गिर पड़ी। पुरानी यादें आ गयीं—आँसू उमड़ पड़े। आज सम्मान-नीय माताश्री भूल गयी कि उसे इस हालत में बहुत से लोग देख रहे हैं, वे मन में क्या समझेंगे?

दोनों स्वर्णसिंहासन पर बैठे, पंडितों ने मंत्रोच्चार करके भगवान खंडोबा की पूजा सम्पन्न की। भोग के बाद आये हुए लोगों को प्रचुर प्रसाद दिया गया। न्यौछावर करके हजारों रुपये वहाँ पर इकट्ठे हुए भिखमंगों को बाँटे गये।

शिवाजी महाराज अपने शिविर से पिता से मिलने चले। साथ में भेंट के लिए अनेक प्रकार के चाँदी-सोने के सामान और मोती-हीरों से लदे घोड़े और हाथी थे।

एक थाल में घृत भरा हुआ था। उस समय की रीति के अनुसार दोनों ने उस थाल में एक-दूसरे की परछाइँ देखी, इसके बाद पर्दा हटा दिया। नगारे और दुंदुभी बजने लगी। पुत्र पिता के पैरों पर गिर पड़ा। शाहजी ने उठाकर छाती से लगा लिया। चारों तरफ से जय-जयकार होने लगी। इतने में सेवक बालक शम्भाजी को ले आये। आज पहली बार दादा अपने पोते को देख रहे थे। प्यार से उसे गोद में बिठाकर चूमने लगे। जीजा माता पति, पुत्र और पौत्र के मिलन को देखकर आत्मविभोर हो रही थी। आज वह परित्यक्ता विरहिणी नहीं, बल्कि गौरवशालिनी पत्नी, माता और दादी थी।

महाराज ने पिता से राजगढ़ पधार कर भोजन और आराम करने की प्रार्थना की।

सोने की पालकी थी, हीरे-मोती जड़े थे। शाहजी जूते उतार कर पालकी में जा बैठे। शिवाजी महाराज उनके जूते अपने हाथों में लिये पैंदल चल रहे थे। प्रजाजन ऐसी पितृभक्ति देखकर धन्य-धन्य कहने लगे।

माता के चेहरे का भाव देखकर वे पुरानी बातों को भूल गये थे।

दादा, पुत्र और पोता सोने के थाल में भोजन कर रहे थे, जीजा बाई परोस रही थी। आज उसका जीवन धन्य हो गया था।

भोजन करने के बाद शाहजी पलंग पर लेटकर आराम करने लगे। पुत्र शिवाजी बैठकर पैर दबाने लगे।

"पिताजी, इन पैरों में धर्म-देशद्रोही बाजीराव घोरपड़े ने बीजापुर सल्तनत के आदेश से जंजीर डाली थी। मैंने उसे मारकर उसकी जागीर में गधों से हल चला दिये हैं। आज वहाँ के महलों में नाचरंग की जगह चील और कौए बोल रहे हैं।"

"बेटा, मैंने तुम्हारी सारी शौर्यगाथा सुनी थी, परंतु तुम दुश्मन की रियासत में केवल १०० सिपाहियों को लेकर चले गये, यह बात युद्ध-नीति के प्रतिकूल है। हमेशा शत्रु के घर में पूरी तैयारी करके जाना चाहिए।"

रात में दरबार का आयोजन हुआ। कवि अज्ञानदास के सिवाय जयपुर से युवक कवि भूषण भी आये थे।

शिवाजी की जो यश-गाथा गायी गई, उसे सुनकर शाहजी की आँखों में हर्षाश्रु आ गये। कवि भूषण ने अपनी तेजस्वी आवाज में यह छंद कहा था।

राखी हिन्दुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो, अस्मृति पुरान राखे बेद विधि सुनी में।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की, धरा में धरम राख्यो गुन राख्यो गुनी में।
भूषण सुकवि जीति हद्द मरहट्ठन की, देस-देस कीरति बखानी तव सुनी में।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरो, दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी में।

दोनों कवियों को चाँदी के हौदे सहित घोड़े और अशर्फी के तोड़े भेंट में दिये गये। अन्य सबको सोने की कंठी और कपड़ों के पाँच बक्स दिये गये।

शाहजी महाराज १५ दिनों तक शिवाजी के साम्राज्य में रहे और उनके विभिन्न किलों का निरीक्षण किया।

२५ वर्ष पहले का पूना गाँव अब बड़ा शहर हो गया था। जीजा माता ने ५ वर्ष के शिवा से सर्वप्रथम यहाँ की जमीन में सोने का हल चलवाया था। आज वह पथरीली जमीन हरी-भरी शस्य श्यामला हो गयी थी। शाहजी हर्ष और गर्व से फूले नही समाते थे। सबसे सुखी थी जीजा माता, जो साधारण गृहस्थ स्त्री की तरह पति, पुत्र और

पौत्र को हाथ से नाना प्रकार के व्यंजन वनाकर खिला रही थी। विदा-वेला आयी। शिवाजी ने जव पैर छुए तो पिता ने उन्हें अंक में भर लिया—शम्भाजी को छाती से लगाकर सिर सूँघते रहे।

जीजा माता, जिनके सामने वड़े-वड़े सरदार और सेनापति काँपते रहते थे, आज सव प्रकार के संयम और लाज के वाँध तोड़कर सुवक-सुवक कर रोने लगी थी।

"प्रभु, मेरी विनती है कि आप वंगलोर छोड़कर काशी वहिन और चिरंजीव व्यंकोजी सहित यहाँ आकर रहें। वैसे शिव्वा और वहुएँ मेरी हर तरह सेवा करती हैं, परंतु लोग चाहे मुँह से न कहें, मन में तो मुझे परित्यक्ता पत्नी ही मानते हैं। मैं आजकल अस्वस्थ रहती हूँ। अंतिम दिनों में आप रायगढ़ में रहकर हमें चरण-सेवा का सौभाग्य दें।"

●

मातृ-दर्शन

सन् १६५७ की अक्टूबर की एक साँझ—सुहावनी संध्या—गुलावी मौसम। शिवाजी देवी भवानी के मंदिर से वाहर आये तो चकित रह गये।

खच्चरों और बैलों का लम्वा-सा कारवाँ—हीरे, पन्नों और जवाहरातों से भरे सोने-चाँदी से दवे पशु धीरे-धीरे किले में प्रवेश कर रहे थे। पंतप्रधान मोरोपंत ने जिज्ञासा शांत की—"महाराज, अम्वाजी सोनदेव ने कल्याण के सूवे पर आधिपत्य कर लिया है और लूट का सामान लेकर आये हैं।" शिवाजी ने अम्बाजी को गले लगाया और वहुमूल्य कंठहार से पुरस्कृत किया। वे विस्मित थे कि कल्याण का शक्तिशाली सूवेदार इतनी आसानी से कैसे हार गया।

"शावाश अम्वाजी, तुम्हारी स्वामिभक्ति और वहादुरी पर हमें गर्व है।" शिवाजी की छाती फूल उठी अपने वहादुर सेनापति को देखकर। पर वे चौंके, पूछा—"इस पालकी में क्या है?"

अम्वाजी ने मुस्कुराते हुए जवाव दिया—"महाराज, इस पालकी में कल्याण की सवसे सुंदर नाज़नीन है—मुल्ला अहमद की पुत्र-वधू सलमा, जिसकी खूवसूरती की शोहरत सारे महाराष्ट्र में फैली हुई है। इसके क्रूर श्वसुर ने सैकड़ों हिंदू ललनाओं की आवरू के साथ खेला है—आज उससे वदला लेने का सुंदर अवसर मिला है।"

अम्वाजी अपनी सफलता पर फूले नहीं समा रहे थे। परंतु शिवाजी विचलित हो उठे। उन्होंने आँखें मूँद लीं—उन्हें अपना वचपन याद आने लगा। पिता शाहजी बीजापुर के सुलतानों के यहाँ जागीरदार एवं फौजी अफसर थे। तीन हज़ार मराठा घुड़सवार और पैदल सिपाहियों की उनकी निजी फौज थी। माता जीजावाई कर्तव्य-निष्ठ, साहसी एवं धर्मपरायणा थीं, किंतु परमात्मा ने उन्हें रूप नहीं दिया था।

शाहजी ने तीस वर्ष की अवस्था में तुका वाई नाम की एक युवती से विवाह कर लिया और उसी के साथ वंगलौर में रहने लगे। सन् १६२६ में उन्होंने जीजा बाई को शिवनेर के किले में भेज दिया। दुखिया जीजावाई ने अपना सारा प्यार वालक शिवा पर उड़ेल दिया और धैर्यपूर्वक दिन विताने लगी।

सौभाग्य से दादाजी कोणदेव जैसे स्वामिभक्त अभिभावक तथा समर्थ गुरु रामदास का मार्गदर्शन मिला। इस कारण बचपन से ही शिवा में अच्छे संस्कार जमने लगे, साहस और वीरता के साथ धर्म के प्रति आस्था के लक्षण नजर आने लगे।

उन दिनों विवाह वचपन में हो जाते थे। वे चौदह वर्ष के हुए तो माता ने पति को उनके विवाह के लिए लिखा। शाहजी ने उन दोनों को वंगलौर में अपने निवास-स्थान पर बुलाया। वहाँ सौत तुका वाई ने उनका तरह-तरह से अपमान किया। परंतु जीजावाई ने वारह वर्ष की कठिन तपस्या से अपने को वहुत संयत कर लिया था।

उन्होंने शाहजी से केवल इतना कहा—"आपके सुख में ही मेरा सुख है! आपका सारा धन और जागीर तुका वाई और उनके पुत्र व्यंकोजी को फले-फूले। शिवा को केवल पूना का गाँव दे दीजिए। यदि उसमें योग्यता होगी तो वह उसे वढ़ा लेगा।

इस प्रकार पंद्रह वर्ष की छोटी-सी अवस्था में वे पूना के जागीरदार वने। उन्होंने घुडसवारों की एक छोटी-सी टुकड़ी तैयार कर ली और मौका देखकर आसपास के इलाकों पर छापे मारने लगे। मुसलमान सुलतानों और अधिकारियों के अत्याचार से लोग वहुत दुखी थे इसलिए उनकी विशेष रोकथाम नहीं हुई। लूट का सामान लाकर माता के सामने रख देते। इसमें से तीसरा हिस्सा सिपाहियों में बाँट दिया जाता। कुछ अंश जीर्ण-शीर्ण मंदिरों के पुनरुद्धार में, कुएँ, वावड़ियों की मरम्मत या निर्माण में व्यय किया जाता। वाकी वचा हुआ धन वेहतरीन घोड़े और नये-नये अस्त्र-शस्त्र के खरीदने में लगाया जाता था।

सब प्रकार से साधनसंपन्न होते हुए भी वे अपने को स्वामी रामदास का सेवक मात्र मानते थे। इसीलिए अपने ध्वज का रंग भी भगवा (गेरुआ) रखा। सन् १६५७ में उनकी अवस्था केवल तीस वर्ष की थी, किंतु इसी बीच महाराष्ट्र के वहुत से किलों पर कब्जा कर लिया। वीस हजार सुसज्जित मराठा वीरों की उनके पास फौज थी। दुश्मनों की वड़ी से वड़ी फौज पर वाज की तरह झपटते और लूटकर वापस रायगढ़ के अपने अभेद्य दुर्ग में चले आते। पचीस कोस का धावा मारकर मराठा फौज रायगढ़ वेखटके वापस पहुँच जाती तो लोगों को शुरू-शुरू में विश्वास नहीं होता। वाद में अफगानों और पठानों में धारणा वन गयी कि शिवाजी को जिन्नातों का सहारा है। फिर तो वे उनका नाम सुनते ही हथियार छोड़ भाग खड़े होते।

दिन-रात युद्ध में लगे रहने पर भी अपनी माता से उन्हें धार्मिक प्रेरणा मिलती रहती थी। यद्यपि हिंदू-धर्म के प्रति पूरी आस्था थी, यवनों के आये दिन के अत्याचार और मंदिरों के विध्वंस से उनका चित्त वहुत खिन्न हो उठता; फिर भी दूसरे धर्मों की उन्होंने कभी निंदा नहीं की और न किसी मस्जिद अथवा गिरजे को नष्ट-भ्रष्ट किया। यही नहीं, उन्होंने जीर्ण-शीर्ण मस्जिदों की मरम्मत भी करायी। अपने सेनापतियों को भी आदेश दे रखा था कि किसी भी धार्मिक स्थान को हानि न पहुँचायी जाय और न दुश्मनों की किसी स्त्री की वेइज्जती हो।

शिवाजी ने देखा कि जवाहरातों से सजी हुई एक परम सुन्दरी युवती सहमी और

सिमटी-सी एक ओर खड़ी है। कुछ देर तक वे अपलक उसकी ओर देखते रहे। फिर कहने लगे—"वहन, उम्र में तुम मुझसे छोटी हो पर तुझमें मुझे अपनी माताजी दिखाई देती हैं। फर्क इतना ही है कि परमात्मा ने तुम्हें अतुलनीय रूप-सम्पत्ति दी है, लगता है, फुर्संत के समय अत्यंत साध से तुम्हारी रचना की है। सौभाग्य से इस सौंदर्य का थोड़ा-सा अंश भी अगर मेरी माँ को मिल जाता तो उसे दुहाग का दु:ख नहीं सहन करना पड़ता और मैं भी सुन्दर होता। मेरे सेनापति ने तुम्हारा अपमान किया, तुम्हें विना वजह तकलीफ दी। जिस धारणा से वह तुम्हें यहाँ ले आया, उसे सोचकर लज्जा से मेरा सर झुका जा रहा है। यदि माँ और गुरुजी सुनेंगे तो सोचेंगे इसके लिए शिवा का संकेत रहा होगा। तुम चिंता न करो। तुम्हें इज्जत के साथ तुम्हारे खाविंद के पास पहुँचा दिया जायगा। मेरी वहन नहीं है, आज से तुम मेरी छोटी वहन हुई और मैं तुम्हारा भाई।"

पास खड़े सैनिकों ने देखा शिवाजी की आँखें गीली हो गयी हैं। थोड़ी देर वाद आश्वस्त होकर क्रोध में काँपते हुए उन्होंने कहा—"अम्वाजी, तुमने अपनी मूर्खता से इतनी वड़ी जीत को हार में वदल दिया। लोग जव सुनेंगे कि शिवाजी अपने हरम के लिए परायी वहू-वेटियों को लूटता है तो हमारे बारे में क्या सोचेंगे। कहाँ रह जायगी मेरी इज्जत? फिर तो मराठे सिपाही और सरदार औरतों को दिन-दहाड़े वेआवरू करेंगे। पिछले चौदह वर्षों से तुम मेरे साथ हो। क्या कभी इस प्रकार की इच्छा या लालसा का आभास भी तुम्हें दिखाई दिया? फिर कैसे तुम्हें हिम्मत हुई कि मेरे आदेश की उपेक्षा कर एक अवला दुखी नारी को यहाँ ले आये। अम्वाजी, तुमने मेरी आवरू में वट्टा लगा दिया। यदि राजा स्वयं अपना शील खो वैठेगा तो सैनिकों का तो वाँध ही टूट जायगा। क्या यही मेरी हिंदू पद-पादशाही का रूप होगा? कसूर तो तुम्हारा इतना है कि तुम्हें फाँसी पर लटका दिया जाय। किंतु, चूँकि इस समय मैं स्वयं क्रोध में हूँ, इसलिए तुम्हारा फैसला मैं प्रधान मंत्री मोरोपंत पर छोड़ता हूँ।"

कहाँ तो अम्वाजी विजय की खुशी में झूमता हुआ आया था और कहाँ सवके सामने उसे यह अपमान सहना पड़ा। पंतप्रधान मोरोपंत का अम्वाजी पर स्नेह था। उसने अपनी देख-रेख में उसे सव प्रकार से योग्य वनाकर इतने वड़े ओहदे पर पहुँचाया था। हाथ जोड़ते हुए शिवाजी से उन्होंने प्रार्थना की कि "अम्वाजी अभी युवक है और कुछ अवोध भी, किंतु वीर और सच्चा स्वामिभक्त है। यह इसका पहला अपराध है, इसे क्षमा किया जाय।"

सलमा समझने की कोशिश करने लगी कि शिवाजी इंसान है या फरिश्ता। उसके श्वसुर के यहाँ लड़ाई में जीती हुई सैकड़ों स्त्रियाँ लायी जातीं। कुछ को तो चुनकर वह अपने लिए रख लेता, और वाकी को सिपाहियों में वाँट देता। उसकी आँखों से अश्रुओं की अविरल धारा फूट पड़ी।

कुछ दिन वाद सलमा विदा हो रही थी, भाई के यहाँ से अपने ससुराल। शिवाजी ने अपनी मुँहवोली वहिन को गले लगाकर विदाई दी। खच्चरों और घोड़ों पर दहेज का सामान था। सुनहरे-रूपहले पर्दे से टँकी पालकी, वगल में सुरक्षा के लिए घोड़े पर चढ़ा हुआ जा रहा था सेनापति अम्बाजी सोनदेव। अब वह अपने महाराज की थाती को वापस लौटाने जा रहा था।

पालकी जव आयी थी, तव वह सिसक रही थी—भय, चिंता और आशंका के आँसुओं से और जव पालकी जा रही थी तव सिसक रही थी—प्यार, आनन्द और उल्लास भरे आँसुओं से।

●

अफजल खाँ का वध

जब भी समय मिला, घूमता रहा हूँ। पिछले दिनों महाराष्ट्र के ऐतिहासिक स्थलों को देखने की इच्छा हुई। मराठों का इतिहास बहुत-सी जिज्ञासाएँ एवं कौतूहल जगाता है। मराठी में यथेष्ट सामग्री उपलब्ध है, अंग्रेजी में भी, किन्तु आश्चर्य है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी में इतनी नहीं है।

जून १९७४ में महाबलेश्वर से प्रतापगढ़ का ऐतिहासिक दुर्ग देखने गया। यद्यपि अब ऊपर तक पक्की सड़क बन गयी है फिर भी रास्ता बहुत ही घुमावदार और उतार-चढ़ाव से भरा है। आज भी इसे दुर्गम कहा जा सकता है। फिर, तीन शतक पहले तो अगम ही रहा होगा।

ऊपर चिलचिलाती धूप, पथरीला इलाका। कुछ समय पहले ही मेरी जाँघ की हड्डी टूट चुकी थी, इसलिए किले तक नहीं जा पाया। नीचे घाटी में एक समतल चट्टान पर सहारा लेकर बैठ गया। बच्चे दौड़ते हुए ऊपर किला देखने चले गये। दूर-दूर तक सह्याद्रि की शृंखलाएँ जंगलों से भरी थीं। आँखें उन पर टिक जातीं तो मराठों के इतिहास की घटनाएँ मानस पर उभर आतीं।

इधर-उधर देख ही रहा था कि कुछ दूर एक समतल जमीन पर बना एक खूबसूरत मकबरा दिखाई पड़ा। कौतूहल जगा, इस वीरान पहाड़ियों के बीच घने जंगल में यह मकबरा!

सहसा स्मृति जाग उठी। यही तो वह स्थान है जहाँ शिवाजी ने आदिलशाही फौज को शिकस्त दी थी। धीरे-धीरे मकबरे की ओर बढ़ा। अन्दर जाकर देखा कि दो कबरें हैं। एक लम्बी और बड़ी, दूसरी औसत साधारण-सी। पता चला कि पहली है कद्दावर अफ़ज़ल खाँ की और दूसरी उसके अंगरक्षक सैयद बण्डा की।

हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब और न जाने कितने बादशाहों और पीरों की कबरें देखीं, मगर वे इतनी बड़ी नहीं थीं।

बरबस स्मृति के परदे पर इतिहास की परतें उभरने लगीं।

मुग़ल बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब के पास बहुत बड़ी शक्ति थी। लगभग सम्पूर्ण भारत पर उनकी सार्वभौम सत्ता की धाक थी।

महाराणा प्रताप के बाद राजस्थान के राजपूत भी मुग़लों के साथ हो गये थे। उनमें मुग़लों के विरोध का जोश उतर चुका था। जसवन्त सिंह और मिर्जा राजा

जयसिंह जैसे तलवार के धनी और कुशल राजनीतिज्ञ मुगल दरबार की इज्जत व शान थे।

एक प्रकार से सारा भारत मुगलों की अधीनता स्वीकार कर चुका था। फिर भी दक्षिण में गोलकुण्डा और बीजापुर की दो ऐसी रियासतें थीं जिन्होंने मुगल-सत्ता के सामने घुटने नहीं टेके। वर्षों तक संघर्ष चला। शाहजहाँ और औरंगजेब दोनों ने बहुतेरी कोशिश की, मगर तोपों और तलवारों की चोटें इन रियासतों को गिरा न सकीं।

शाहजहाँ का जीवन खप गया। खुद के बनाये ताजमहल में मुमताज महल के कब्र की बगल में दफना दिया गया। औरंगजेब की जिन्दगी का बहुत बड़ा समय इन दिनों रियासतों को उखाड़ने में लगा; किंतु कामयाबी हासिल न हो पायी।

बाद में छल-कौशल से बीजापुर और गोलकुण्डा को सर कर पाया। दोनों रियासतों को धोखा दे गये—उन्हीं के विश्वस्त सरदार और सामन्त।

बीजापुर के पास प्रतिरोध की शक्ति थी। यदि उसके दरबारियों को औरंगजेब न फोड़ता तो बीजापुर की सल्तनत गिरती नहीं। सुल्तान अली आदिलशाह के पास पठान, मराठे और तैलंगों की बड़ी फौज थी। ये कौमें आज भी मशहूर लड़ाकू मानी जाती हैं। अफ़जल खाँ, इखलास खाँ, सिद्दी इब्राहिम जैसे दिलेर और माहिरे जंग जवानों के अलावा शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले, चाचा मालोजी, बाजीराव घोरपड़े जैसे वीर और युद्धप्रवीण मराठे बीजापुर की फौज में थे।

भारत के लिए वह समय अत्यंत संकटपूर्ण था। भारतीय संस्कृति और सभ्यता उत्तर भारत में तुर्कों के आगमन से ही विपन्न थी। तुर्क, पठान और मुगलों ने जिस प्रकार उत्तर भारत में हिंदू-संस्कृति को नेस्त-नाबूद करने का जिहाद बोल रखा था, उसी प्रकार दक्षिण में आदिलशाह इस्लामी जोश में हिंदू-धर्म पर कठोर प्रहार कर रहा था। दुर्भाग्य यह था कि इस कार्य का विरोध करने वाला कोई नहीं था, बल्कि उत्तर में यदि राजपूत मुगलों के साथ थे तो दक्षिण में मराठे।

उन दिनों शिवाजी ३०–३२ वर्ष के युवक थे। छोटी-सी सेना उनके पास थी, साधन अत्यंत सीमित। माता जीजा बाई और समर्थ गुरु रामदास की शिक्षा-दीक्षा से संस्कारित होने के कारण अपने देश की संस्कृति पर आये दिनों के अत्याचार और प्रहार उनकी सहन-शक्ति को चुनौती दे चुके थे।

अंत में हिंदुओं पर किये जाने वाले अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिए उन्होंने अपने से कई गुनी बड़ी शक्ति दिल्ली और बीजापुर से टकराने का निश्चय कर लिया।

दिल्ली दूर थी, पर बीजापुर तो उनके कोंकण से सटा हुआ था। शिवाजी ने आये दिन बीजापुर की फौजों पर छापे मारने शुरू कर दिये। आदिलशाह को खबरें

मिलने लगीं, आज यहाँ शिवाजी नें धावा किया तो कल वहाँ। धीरे-धीरे यह खबरें भी आयीं कि किले भी छीने जा रहे हैं।

आदिलशाह को यह अहसास होने लगा कि यदि शिवाजी को न दवाया जा सका तो उसकी सल्तनत खतरे में आ मकती है। अंकुर को वृक्ष वनने के पहले ही नष्ट कर देना चाहिए। अतएव उसने खवास खाँ और वाजीराव घोरपड़े को जिम्मेदारी सौंपी कि शिवाजी ने जिन इलाकों पर दखल कर लिया हैं, उसे वापस छीन लें। उसे पकड़ कर वीजापुर लाया जाय। सुलतान के इरादों की खवर गुप्तचरों ने शिवाजी तक पहुँचायी। वाजीराव घोरपड़े भोसला वंश का ही था, किन्तु तन और मन से आदिलशाह का खादिम था। इसी ने अफजल खाँ के साथ जाकर, मध्य रात्रि में शिवाजी के पिता शाहजी को अचानक वंदी बना लिया था। अपने ही हाथों से उनके हाथों और पैरों में लोहे की वेड़ियाँ डाल दी।

अभी युद्ध की तैयारियाँ हो ही रही थीं कि शिवाजी अचानक अपने थोड़े से वहादुर घुड़सवारों को लेकर घोरपड़े की जागीर मुधेल में जा पहुँचे। हालाँकि घोरपड़े की फौज ज्यादा थी, किन्तु उसके सैनिकों के हृदय में शिवाजी की राष्ट्रभक्ति ने प्रभाव वना लिया था। वे जानते थे कि हिन्दुवानी की रक्षा के लिए यह नौजवान अकेला ही वक्त की दो वड़ी ताकतों से जूझ रहा है।

थोड़ी-सी लड़ाई के वाद शिवाजी घोरपड़े के महल में जा पहुँचे। वह चकित रह गया। फिर भी हिम्मत हारा नहीं। वीर था ही, साहसी भी कम नहीं था; अनेक युद्ध उसने स्वयं संचालित किये थे। लपक कर तलवार सम्हाली और शिवाजी से भिड़ गया। मगर उसकी शकल वता रही थी कि इस वार वह मानो साक्षात् काल से लड़ रहा हो। अधिक समय नहीं लगा। शिवाजी की तलवार के एक झटके ने उसका सर धड़ से अलग कर दिया।

खवास खाँ को जव यह खवर मिली तो वह सकते में आ गया, हिम्मत पस्त हो गयी। आदिलशाह के पास दरख्वास्त पेश की कि हुजूर, वाक़यात कुछ ऐसे हो रहे हैं कि फौजों में घवराहट है और मेरी तवियत इन दिनों नाशाज रहती है। लिहाज़ा यह अहम् जिम्मेदारी किसी दूसरे सेनापति के सुपुर्द की जाय तो अच्छा रहे।

आदिलशाह भाँप गया कि खाँ शिवाजी से डर गया है। अगर इसे जंग के लिए भेजा भी गया तो शिकस्त खानो पड़ेगी। इसलिए उसने सवसे वड़े सेनापति अफज़ल खाँ को वुलाया।

अफज़ल कद्दावर और हिम्मती था। लड़ाई और मोर्चेवंदी का उसे अच्छा अनुभव था। इसके अलावा वह राजनीतिक चालवाजियों में भी कुशल माना जाता था। सैनिकों के मन में ऐसा यकीन था कि उसके साथ रहने पर जीत अवश्य होगी। तहेदिल से

वीजापुर के सुल्तान के प्रति वफ़ादार भी था। औरंगजेव ने कई वार कोशिशें कीं वहुत वड़े-वड़े प्रलोभन दिये, मगर वह वीजापुर छोड़ने को राज़ी नहीं किया जा सका।

आदिलशाह ने अफ़ज़ल से शिवाजी के मसले पर वात की। खाँ ने कहा—"हुजूर, आप क्यों फिक्र करते हैं। उस छोटे से पहाड़ी चूहे को पकड़ने के लिए तो मेरे वेटे फाजिल खाँ और मूसे खाँ ही काफी हैं। अगर आपका यही हुक्म है तो खुद वड़ी फौज के साथ कूच करता हूँ और दो महीने के दरम्यान उसे लाकर आपके कदमों में डाल दूँगा।"

अफ़ज़ल खाँ के हरम में जव रामगढ़ कूच करने की खवर पहुँची तो कोहराम मच गया। पिछले दस वर्षों में शिवाजी की कामयावियों ने दुश्मनों में कुछ ऐसा आतंक फैला दिया था कि वड़ी से वड़ी फौज भी उनका मुकावला करने में घवराती थी। वेगमों ने रोना-पीटना शुरू कर दिया। वेटे समझाने लगे कि आप आदिलशाही सल्तनत के सबसे आला सिपहसालार हैं, लिहाज़ा इस छोटे से काम के लिए आपका जाना वाजिव नहीं लगता। आपके मातहत इतने सारे हिन्दू-मुसलमान सरदार हैं, उनके जिम्मे चाहे जितनी वड़ी फौज देकर भेज दें।

अफ़ज़ल खाँ मुस्कुराता रहा। उसने वड़ी वेगम से कहा, "विला वजह आप परेशान नज़र आती हैं। मेरे साथ चलिए। खुद देखेंगी कि कितनी आसानी से उस वदतमीज शिवा को सुल्तान की कदमवोसी के लिए पेश कर देता हूँ। वित्त भर का इन्सान, मामूली-सी वेतरतीव फौज़ और वह भी जंगली मवालियों की। मेरी ताकत के सामने कव तक टिकेंगी।"

१६५९ ई० की मई का महीना था। अफ़ज़ल खाँ वीजापुर से अपनी फौज के साथ रवाना हुआ। ५०० हाथी, १२ हजार घुड़सवार, ३० हजार पैदलों की सजी-सजायी फौजों के साथ छोटी-वड़ी अनेक प्रकार की तोपें भी थीं। अफ़ज़ल के वेटे फजल खाँ और मूसे खाँ, मराठा सरदार प्रतापराव मोरे, नाइकजी पानचड़े, कल्याणजी यादव और शिवाजी के सगे चाचा संत्राजी भोसले भी साथ थे। इन देश-धर्म-द्रोहियों को शिवाजी के पहाड़ी क्षेत्र और किलों की पूरी जानकारी थी।

आदिलशाही फौज की व्यवस्था विस्तृत थी। तम्वू, कनातें, शामियाने, दूकानें, नौकर, खिदमतगारों की तायदाद भी वदस्तूर वड़ी थी। सामान ढोने के लिए वैल-गाड़ियों की कतार साथ चल पड़ी। फौज के साथ चल रहा था अफ़ज़ल खाँ का शानदार और रंगीन हरम। लिहाज़ा, जहाँ भी डेरा पड़ता, एक अच्छा-खासा शहर वस जाता।

कहा जाता है कि अफ़ज़ल खाँ डील-डौल का कुछ इतना वड़ा था कि घोड़े उसका वोझ सम्हाल नहीं पाते थे। इसलिए वह अपने प्रिय हाथी 'फतहलश्कर' पर सवारी

करता था। दुर्योग से कूच के ठीक एक दिन पहले वह हाथी मर गया। बेगमों ने समझाया कि असगुन के आसार नजर आ रहे हैं, खुदा जाने क्या होनेवाला है।

अफ़ज़ल खाँ के दिल में भी शिवाजी से दहशत-सी तो थी ही। उसके अलावा बेगमें, बेटे, रिश्तेदारों और मुसाहिबों की आरजू-मिन्नत के दरम्यान, फतहलश्कर की अचानक मौत ने एक प्रकार भय-सा उत्पन्न कर दिया, परन्तु वह सुलतान से वादा कर चुका था। अब कूच के अलावा और कोई चारा नहीं था।

शिवाजी के राज्य में पहुँच कर उसने पूरे जोश और दमखम के साथ प्रजा पर जोर-जुल्म शुरू कर दिये। जिस ओर बढ़ता, मन्दिरों को तोड़ देता, गाय-बैलों को कत्ल कर देता। उसके सिपाही मराठा स्त्रियों का शीलहरण करते। आत्मरक्षा के लिए बहुत-सी स्त्रियाँ कुएँ और तालाबों में डूबकर प्राण देने लगीं।

माता जीजाबाई और शिवाजी के पास समाचार पहुँच रहे थे। वे मन मसोसकर रह जाते। सागर-सी उमड़ती शाही फौजों से टकराने की बात साधारण न थी। रामगढ़ का दुर्ग तो सुरक्षित था, किन्तु खुले मैदान में अफ़जल की विशाल वाहिनी से मोर्चा लेना निश्चित रूप से आत्महत्या कही जाती। अफ़जल ने देखा कि दुश्मन मैदान में मुकाबले में नहीं आ रहे हैं, उसने जुल्म का कहर ढा दिया। शिवाजी व्याकुल हो उठे, किंतु किसी प्रकार का कदम उठाने के पहले पूरी तौर पर हार-जीत के प्रत्येक पक्ष पर गम्भीरता से विचार करना नितांत आवश्यक था, इसीलिए वे आगे बढ़ नहीं रहे थे।

जब जुल्मोक़हर से भी शिवाजी मैदान में नहीं आये तो खान ने एक आखिरी दाँव फेंका। शिवाजी की कुलदेवी तुलजा भवानी के मन्दिर को तोड़कर उसके आँगन में गोहत्या कर दी।

अन्याय की पराकाष्ठा हो चुकी थी। इस समाचार ने शिवाजी को विचलित कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि दुश्मन का खात्मा करना नितांत आवश्यक है, भले ही प्राणों का बलिदान करना पड़े। माता जीजाबाई के चरण छूकर उन्होंने अत्यंत हृदयबेधक शब्दों में निवेदन किया—"माताजी, अब तो यह अत्याचार सारी सीमाओं को तोड़ चुका है। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। कुल-वधुओं और कुमारी कन्याओं का शीलहरण हो रहा है, विठोबा और कुलदेवी तुलजा भवानी के मन्दिर ध्वस्त और अपवित्र किये जा चुके हैं। आपके चरणों की सौगंध है मैं या तो इस राक्षस का वध करके भवानी के अपमान का प्रतिशोध लूँगा या फिर आपको अपना मुँह नहीं दिखाऊँगा।"

माता जीजाबाई साधारण महिला नहीं थीं। धर्म, संस्कृति और देश के प्रति श्रद्धा और आदर की भावना उन्होंने ही शिवाजी के हृदय में भरी थी। फिर भी माँ का हृदय था। स्वीकृति देने का स्पष्ट अर्थ था—पुत्र को अग्निकुंड में झोंक देना। मन

में विचार आया—'कहाँ महिषासुर के समान अफ़जल खाँ और कहाँ मेरा दुबला-पतला शिवा ! अफ़जल की सुसज्जित पचास हजार की सेना का सामना करने के लिए केवल सात हजार की सेना !'

फिर भी धर्म, देश और प्रजा की रक्षा की भावना ने उन्हें बल दिया। पुत्र को गले से लगाकर आशीर्वाद दिया और कहा कि "वत्स, प्रस्थान करो; विजयश्री तुम्हारा वरण करेगी। मेरी बायीं आँख फड़क रही है, भगवती तुलजा तुम्हारी रक्षा करेगी।"

रायगढ़ के किले से, सह्याद्रि पर्वत के जंगलों में स्थित प्रतापगढ़ के लिए शिवाजी ने प्रस्थान किया। उन दिनों उनकी बड़ी रानी सई बाई मरणासन्न थी। पुत्र सम्भाजी केवल दो वर्ष का था। शिवाजी ने रानी से विदा ली; पुत्र को प्यार किया और वे किले से निकल पड़े। सावन का महीना, अँधेरी रात और घनघोर वर्षा !!—मगर उन्हें तो उस महान असुर का वध करना था। रुकते कैसे ? स्वप्न में उन्हें कुलदेवी तुलजा भवानी के दर्शन पिछली रात में हुए थे। उन्होंने आशीर्वाद भी दिया—"शिवा, चिंता मत करो। दैत्य का नाश होगा और तुम विजयी बनोगे।"

किसी तरह वे प्रतापगढ़ जा पहुँचे। एक दिन जब अपने सरदारों के साथ आक्रमण-प्रत्याक्रमण पर वे परामर्श कर रहे थे, उन्हें रानी सई बाई के देहान्त का मर्मभेदी दु:संवाद मिला। इस आघात से उनका हृदय विचलित हो उठा; किन्तु कर्त्तव्य-पालन को उन्होंने पत्नी के मोह और औपचारिकता से अधिक महत्त्व दिया। वे रायगढ़ नहीं गये।

अफ़जल खाँ को खबर मिली कि शिवाजी रायगढ़ से प्रतापगढ़ चले गये। उसे ताज्जुब हुआ कि इतनी जबर्दस्त घेरेबंदी के बावजूद यह सब कैसे मुमकिन हुआ। दिन बीत रहे थे, मगर शिवाजी खुले मैदान में लड़ने नहीं आ रहे थे। इस बार उसने एक नयी चाल खेली। वह जानता था कि शिवाजी गौ-ब्राह्मण के भक्त हैं, इसलिए अपने सरदार कृष्णाजी ब्राह्मण के हाथ एक पत्र शिवाजी के पास भेजा। कृष्णाजी शिवाजी से मिले। उन्होंने समझाया कि अफ़जल खाँ आपके पिता शाहजी राजा के मित्र हैं। आयु में आपसे बड़े हैं और हकीकत यह है कि वह आपसे मित्रता चाहते हैं। यह सुनकर शिवाजी ने अफजल खाँ का पत्र पढ़ा। उसमें बेहद धमकी भरी थी और लिखा था कि, तुम्हारी शरारत से हम बेहद नाखुश हैं। खैरियत इसी में है कि तुम अपने सारे किले हमारे सुपुर्द करो और सुलतान के हुजूर में हाजिर होने के लिए मेरे साथ बीजापुर दरबार चलो; वर्ना तुम्हारी इस छोटी-सी बेतरतीब मावली फौज को हम कुचल देंगे और रायगढ़ और प्रतापगढ़ के तुम्हारे सारे किले नेश्त-नाबूद कर दिये जायेंगे।

शिवाजी ने शांतचित्त से पत्र पढ़ा। उसकी प्रतिक्रिया उन्होंने अपने चेहरे पर

नहीं आने दी। कृष्णाजी को आदर सहित ठहराया। दूसरे दिन अपने एक विश्वस्त साथी पंताजी गोपीनाथ के हाथ अफ़जल के नाम एक पत्र लिखा और कृष्णाजी को सम्मानसहित पंताजी के साथ विदा कर दिया। साथ में खाँन के लिए उपहार भी भेजे।

पंताजी धैर्यवान और कुशल राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने बाअदब कोर्निश करते हुए अफ़जल खाँ से कहा—"शिवाजी महाराज ने आपको सलाम कहा है; उन्हें आपकी सारी शर्तें मंजूर हैं। परंतु इसके पहले कि वे आपकी और सुलतान की खिदमत में हाज़िर हों, आपसे कुछ गुफ़्तगूँ करना चाहते हैं। पर इसमें दिक्कत यह है कि आपकी इस बड़ी और बेशुमार फौज, तोपों, हाथियों और घोड़ों की जमात का उनके दिल में एक खौफ़-सा बैठ गया है। लिहाज़ा, हम यह दरख्वास्त करना चाहेंगे कि हुज़ूर प्रतापगढ़ तशरीफ़ लायें और हमें इज्जत बख़्शें।"

पंताजी की बातों का अफ़जल पर पुरजोर असर पड़ा। वह तो मौके की ताक में था ही। सोचा, क्यों न उस पहाड़ी चूहे को उसके बिल में ही खत्म कर दिया जाय। अपने सरदारों के विरोध के बावजूद उसने मंजूरी दे दी। बिना देर किये वह पूरी सेना सहित जावली की घाटी के लिए रवाना हो गया। हरम, खेमें, तम्बू और शामियाने भी साथ चले।

जावली के क्षेत्र में घनघोर बारिश होती है। घने जंगल, पहाड़ी रास्ते, दर्रे पानी और कीचड़ से भर जाते हैं। उसमें फँसकर अफ़जल खाँ के बहुत से हाथी-घोड़े मरने लगे, बहुत से बीमार हो गये। काफी सिपाही भी बीमारी से मर गये। आये दिन कई दलदल में फँसते तो कई फिसलकर मरते। जहरीले कीड़े और साँपों ने तो और भी परेशानी पैदा कर दी। इस प्रकार मुसीबतें झेलते हुए आखिरकार अफ़जल खाँ मय फौज के प्रतापगढ़ के नीचे पहुँच सका।

पंताजी फिर खाँन से मिलने आये। कहने लगे—"मैंने पहले ही हुज़ूर से अर्ज की थी कि शिवाजी को आपकी फौज से बड़ा खौफ है, परन्तु वे आपसे मिलने के लिए बेचैन हैं। एक सूरत यह है कि आप हमारे प्रतापगढ़ तशरीफ लायें। आपके साथ दस हथियारबन्द सिपाही रहेंगे और इतने ही महाराज के साथ। वे सब दूर रहेंगे, आप दोनों की बातचीत तखलिया में होगी।"

अफ़जल खाँ अपने शिकार को नजदीक पाकर उतावला हो रहा था। उसे अपनी जिस्मानी ताकत का पूरा गुमान था। उसका इरादा था कि शिवाजी को दबोच कर सुलतान के कदमों में पटक दूँगा। वह इस कामयाबी से अपनी इज्जत में चार चाँद लगाना चाहता था। उसने फौरन मंजूरी दे दी। तारीख और वक़्त भी मुकर्रर कर दिया।

प्रतापगढ़ में तैयारियाँ शुरू हो गईं। शिवाजी जानते थे कि अफ़जल परले सिरे

का धूर्त और धोखेबाज है। उसकी फौज भी बहुत बड़ी है। मगर माँ भवानी पर उनका अखंड विश्वास था और सहारा था सह्याद्रि की पेचीली घाटियों और जावली के घने जंगलों का। इन स्थानों के कोने-कोने की जानकारी उनके साथियों को थी। उधर अफ़ज़ल खाँ की फौज के लिए उक्त अनजान जगह एक फंदे का काम कर सकती थी।

उन्होंने अपने सेनापतियों के साथ योजना बना ली। अफ़ज़ल खाँ की फौज को चारों तरफ से घेरने की व्यवस्था भी बन गई। उनके पास सैनिक कम थे, किंतु सह्याद्रि की पहाड़ियाँ दीवार बनीं और तंग घाटियों पर मराठे सरदार अपनी छोटी टुकड़ियों के साथ डट गये। आदेश था कि प्रतापगढ़ दुर्ग की तोपों की तीन आवाजें सुनते ही दुश्मन की फौज पर टूट पड़ा जाये ताकि कोई भागने न पाये। इस प्रकार पूरी फौज ही नष्ट कर देना उनका लक्ष्य था।

दुर्ग के नीचे की घाटी में मुलाकात की जगह तय की गई थी। जंगल का एक हिस्सा साफ कर बहुत ही शानदार शामियाना ताना गया। सजावट के लिए वंदनवार और तोरण बाँधे गये।

दीपावली के दस दिन बाकी थे। इस त्योहार पर सिपाहियों को बारी-बारी से अपने घर जाने की छुट्टी मिलती थी ताकि वे अपने बीबी-बच्चों से मिल सकें। ऐसे मौके पर सिपाही, माँ-बाप, पत्नी और बच्चों के लिए कमाई से बचाये रुपयों से कुछ नये कपड़े और बच्चों के लिए मिठाइयाँ आदि ले जाते। इस अवसर की प्रतीक्षा हर सिपाही करता है। मगर इस मौके पर छुट्टी नहीं दी गयी।

११ नवम्बर, १६५९ शिवाजी और अफ़ज़ल की मुलाकात का दिन। स्नानादि से निवृत्त हो नित्य की भाँति शिवाजी ने भवानी का पूजन किया। लगभग ८ बजे हल्का-सा जलपान किया। फिर उन्होंने कपड़े पहनने शुरू किये। शरीर पर लोहे की महीन जंजीरों का बख़्तर और सिर पर लोहे के चादर की टोपी। ऊपर से सदा की भाँति अंगरखा पहना और सर पर पाग बाँध ली। बायें हाथ की मुट्ठी में तेज बघनखा दबा लिया। ललाट पर रक्त-कुंकुम का तिलक। एक बार फिर भवानी का स्मरण किया और बस वे अफ़ज़ल खाँ से मिलने चल पड़े। साथ में चुने हुए ऐसे दस साथी थे जो शिवाजी महाराज के संकेत पर अनेक बार अपनी जान की बाजी लगा चुके थे।

अफ़ज़ल का दिल बल्लियों उछल रहा था। उसे पूरा इतमीनान था कि उसके सरदार ऐन वक्त पर उसकी हिदायत को बखूबी अंजाम देंगे। पहले ही आकर वह ऊँचे से मंच पर बैठ गया। उसके दस हथियारबंद अंगरक्षक एक तरफ पूरी चौकसी के साथ खड़े थे। इनमें सैयद बंडा नाम का मशहूर जाँबाज और खूँखार सरदार भी था। इन्हीं दसों में कृष्णाजी ब्राह्मण भी मौजूद थे।

समय करीब आ गया। अफ़जल ने देखा कि ३२-३४ वर्ष की उम्र का एक साँवला-सा युवक चला आ रहा है। औसत कद, मगर शेर बब्बर-सी फुर्तीली और शानदार चाल, शक्ल पर दहशत की शिकन तक नहीं। उसे तो लोगों ने बताया था कि शिवाजी खौफ़ से परेशान और बीमार-सा रहता है। परन्तु यहाँ तो कुछ और ही नज़र आ रहा था। पहले से तय था कि दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए आगे बढ़ेंगे। मगर अफ़जल बैठा रहा। शिवाजी आगे बढ़े और बदस्तूर उन्होंने खाँन को आदाब किया। खाँन ने बहुत ही गुरूर के साथ धमकाते हुए कहा—"खैरियत है कि तुम आये। मगर हम यह पूछना चाहते हैं कि आदिलशाही सल्तनत में तुमने इतनी फिसाद क्यों मचा रखी है? तुम्हारी लूट-खसोट, छापेमारी रोज़मर्रा की बात हो गई है। मुल्क और रिआया के अमन-चैन को बरबाद करने के लिए तुम जिम्मेदार हो। सुल्तान तुम पर बेहद नाराज़ है।"

बलवान शत्रु उन्हें फटकार रहा था, उन्ही के इलाके में। मगर शिवाजी ने साहस, धैर्य और बुद्धि का संतुलन बिगड़ने नहीं दिया। उन्होंने कहा—"खाँ साहब, आपको ग़लत खबरें मिली हैं। मुल्क में चारों तरफ डाकू और लुटेरे फैले हुए थे। मैंने तो उन्हें खतम करके उल्टा अमन और चैन कायम करने की कोशिश की है।"

खाँन की आवाज कुछ नरम पड़ी। कहने लगा, "खैर, जो कुछ हुआ उसे गुज़रा समझ लेते हैं। तुम हमारे साथ बीजापुर चलो, सुल्तान से मुआफ़ी माँगो। यकीन करो हम खुद तुम्हारी सिफारिश करेंगे।"

इतना कहकर वह शिवाजी से मिलने के लिए आगे बढ़ा। करीब आकर उसने उन्हें बाँहों में कस लिया। दूर से ऐसा लग रहा था मानो खाँन बहुत दिनों से बिछुड़े अपने किसी भाई से मिल रहा हो। मगर शिवाजी ने महसूस किया कि अफजल की बाँहें अजगर की तरह उन्हें कसती जा रही हैं। उन्होंने ज्योंही उस गिरफ्त से अपने को छुड़ाने की कोशिश की कि उस दैत्य ने शिवाजी के सर पर एक छोटी, मगर तेज कुल्हाड़ी से वार किया। यह कुल्हाड़ी अफ़जल अपने चोगे में छिपाये था। पाग के नीचे लगी लोहे की टोपी ने वार सह लिया। महाराज का सर बच गया, मगर खून छलक आया। शिवाजी ने अद्‌भुत वेग से तुरंत पैतरा बदला और बायें हाथ की मुट्ठी में दबे बघनखे से अफजल के पेट की अँतड़ियाँ खींच निकालीं। "या अल्लाह! मार डाला।" दर्द और घबराहट से खाँन की आँखें बाहर निकल रही थीं। एक हाथ से वह बाहर निकलती अँतड़ियों को सम्हाल रहा था दूसरे हाथ को ऊँचा कर आवाज़ें देने की कोशिश कर रहा था। पर उसकी शक्ति क्षीण होने लगी और वह लड़खड़ाने लगा।

सब कुछ मानो मिनटों में गुजर गया। खाँन के आदमियों ने ऐसी उम्मीद नहीं की थी कि शिवाजी अफ़जल की गिरफ्त से निकल सकेंगे। उनका अंदाज था कि इनको तो

वह अपनी वाँहों में ही पीस डालेगा। कराहते हुए अफ़जल की चीख सुनकर कृष्णाजी और सैयद अफ़जल की रक्षा के लिए दौड़े। दोनों ने एक साथ शिवाजी पर आक्रमण किया। मगर महाराज ने एक वार में ही सैयद का सर काट दिया। ब्राह्मण को मारना धर्मविरुद्ध जानकर कृष्णाजी के वार को केवल वचाते रहे। कुछ देर यह क्रम चलता रहा। आखिर शिवाजी के एक अंगरक्षक जीवा महाला ने धर्मद्रोही कृष्णाजी का सर काट गिराया। दोनों ओर के अंगरक्षक आपस में गुंथ चुके थे। शोर-शरावा वढ़ने लगा। अफ़जल खाँ जमीन पर गिरा, भागने के लिए वह अपने शिथिल शरीर को घसीट रहा था। इसी बीच उसके कुछ आदमी आये और फुर्ती से एक पालकी में उसे लिटाकर घटनास्थल से ले भागे। किंतु शिवाजी महाराज के एक सरदार काकाजी ने यह देख लिया। लपक कर उन्होंने पालकी को गिराया और अफजल का सर काटकर अलग कर दिया। इस प्रकार अपने समय के दुर्दान्त दैत्य का अंत हो गया।

पूर्व निश्चित संकेत पाते ही प्रतापगढ़ दुर्ग से तोपों ने तीन बार गर्जना की। आदिलशाही फौज ने यह समझा कि खाँन साहव की अगवानी के लिए तोपें छोड़ी जा रही हैं। वे निश्चिंत थे। मौज-मस्ती का दौर चल रहा था। मगर एकाएक "हर-हर महादेव ! जय अम्वे भवानी !" कहते हुए तलवार और भालों को साधे मराठे आकर टूट पड़े। पहाड़ियों, घाटियों और जंगलों से वही नारा गूँजने लगा। इसी बीच फौज में खवर फैल गई कि अफ़जल खाँ मारा गया। इस खवर को सुनते ही सिपाहियों की हिम्मत छूट गयी। फौज में बड़ी भगदड़ मची। जो जिधर रास्ता देखता, भागता। मगर घाटियों की नाकेबंदी ऐसी थी कि कोई भी वचकर निकल न पाया। आदिलशाह की वहुत बड़ी फौज मय हथियार और सामान के वहीं पर विखर गई। वहुत बड़ी संख्या में सैनिक मारे गये। अफ़जल खाँ के दो लड़के और वीजापुर के कई मराठे सरदार भी काम आये।

शिवाजी के इस गौरवपूर्ण विजय की खवर विजली की तरह फैल गयी। सारे प्रदेश में हर्ष की लहर दौड़ गयी। एक तेज घुड़सवार की मार्फत रायगढ़ में माता जीजावाई के पास इस विजय की सूचना भेजी गई। वहाँ भी हर्ष की दुंदुभी वज उठी। स्त्रियाँ शंखध्वनि करने लगीं, प्रजा आश्वस्त हुई और सभी लोगों ने यह महसूस किया कि अव उसे आदिलशाही असुरों के महानायक दुर्दमनीय अफ़जल के अत्याचारों से निस्तार मिल गया !

इस युद्ध से पूर्व तक शिवाजी मध्यम श्रेणी के जागीरदार गिने जाते थे। किंतु अफ़जल की फौज पर विजय प्राप्त करने पर उनकी शक्ति और वुद्धि का लोहा सभी मानने लगे। कीर्त्ति और प्रतिष्ठा वढ़ी। हाथी, घोड़े, ऊँट, तोपें और तोपों को खींचने वाली वैलगाड़ियाँ और असंख्य हथियार और गोले उनके हाथ लगे। तम्बू, शामियाने, कनातें और रसद भी खूव मिली। हरम के वेशुमार हीरे-जवाहिरात भी प्राप्त हुए।

महाराज का नियम था कि शत्रुओं की स्त्रियों पर किसी प्रकार का अत्याचार न होने पाये, इसलिए बेगमों को वापस बीजापुर भेज दिया गया।

इस महत्वपूर्ण युद्ध ने उनकी धाक दक्षिण के गोलकुण्डा से सुदूर उत्तर दिल्ली तक जमा दी। सताये गये हिन्दुओं के मन में आशा बँधी और उन्हें यह विश्वास हुआ कि अब उनके धर्म, प्राण की रक्षा अवश्य होगी और यही कि शिवाजी के रूप में हिन्दू धर्म के रक्षार्थ कोई अवतार आया है।

टॉड तथा कई दूसरे अंग्रेज इतिहासकारों ने मराठों का जिक्र बड़े हेय दृष्टिकोण से किया है। अधिकांश अंग्रेज और मुस्लिम इतिहासकारों ने यह साबित करने की कोशिश की है कि शिवाजी ने धोखे से अफ़जल की हत्या की। किंतु आदिलशाही सल्तनत के प्रसिद्ध और प्रामाणिक इतिहासकार नशस्ता ने बीजापुर के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि "सुलतान ने अफ़जल और कान्होजी जेदे को हिदायत दी थी कि चाहे जिंदा या मुर्दा, किसी भी हालत में शिवाजी को हाजिर किया जाय।"

मुगल और मराठा इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य सर यदुनाथ सरकार ने पुरानी पांडुलिपियों एवं अन्यान्य प्राप्त सामग्रियों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि अफ़जल खाँ ने ही पहला वार किया। यदि शिवाजी बख्तर और लोहे की टोपी न पहने होते तो कुल्हाड़ी के वार से उनकी मृत्यु निश्चित थी। अफ़जल की अजगरी गिरफ्त में ही उनकी पसलियाँ चूर-चूर हो जातीं। परंतु बघनखा के सामयिक प्रयोग ने उन्हें बचा लिया, जिसे उन्होंने केवल सुरक्षा के लिए ही मुट्ठी में दबा रखा था।

धोखे और फ़रेब का सहारा प्रायः हर मुस्लिम शासक ने उन दिनों लिया। हिन्दुओं के विरुद्ध इसका प्रयोग तो उनके लिए 'जिहाद' था, शबाब का सीधा रास्ता।

मैं मकबरे में बैठा रहा। अंधेरा हो आया था। बच्चे कब ऊपर दुर्ग देखकर आ गये, पता नहीं चला। एकाएक मेरी छोटी दौहित्री ने कंधे पर हाथ रखकर पूछा, "नानाजी, इन चबूतरों में क्या है?"

मैंने कहा—"बेटी, तुम बड़ी होगी तब इतिहास में पढ़ोगी कि इन मकबरों में शुम्भ-निशुम्भ नाम के दो राक्षस हैं जिन्हें शिवाजी ने यहाँ हमेशा के लिए सुला दिया है। चलो चलें........।"

मातृत्व

महाराष्ट्र केशरी शिवाजी महाराज ने २० वर्ष की आयु में ही तोरना, कोंडाना और पुरंदर के किले जीत लिये थे। उनका यश कोंकण से लेकर कल्याण तक फैल गया। उनकी फौजों में मावलों के सिवाय उच्च जाति के मराठे, पठान और सैयद भी भर्ती होने में गौरव का अनुभव करते। मुग़ल बादशाह और बीजापुर के सुल्तान दोनों को ही उनकी बढ़ती हुई शक्ति से खतरा महसूस होने लगा। वे उन्हें नेस्त-नाबूद कर देने का मौका देख रहे थे।

महाराज ने सुरक्षा की दृष्टि से महाबलेश्वर के पास जावली नाम के घने जंगल में सह्याद्रि पर्वत पर प्रतापगढ़ नाम के एक सुदृढ़ और अभेद्य किले का निर्माण कराया। किले की दीवारें प्राकृतिक ऊँचे-सीधे पहाड़ों से बनी थीं; उन पर चढ़ना-उतरना मनुष्य की तो औकात ही क्या, साँप-गिलहरी के बस की भी बात नहीं थी।

देवगिरि, गोलकुंडा और रणथम्भोर के किलों की पंक्ति में इसकी गणना होने लगी।

यहीं उन्होंने तुलजापुर की भवानी की मूर्ति स्थापित की। वे स्वयं रायगढ़ से आकर बीच-बीच में यहाँ रहने लगे। किले के भीतर फौजियों, कारकूनों तथा अन्य कर्मचारियों का एक छोटा-सा गाँव बस गया था।

एक शाम को एक अहीर युवती किले के फाटक पर दौड़ती हुई पहुँची। दूध बेचकर आयी थी, अब घर जाने की जल्दी में थी।

वह रोज दो बार जावली गाँव से दूध लेकर कोस भर आती-जाती। इसके सिवाय घर की खेती-बारी, गाय-भैंस का भी काम रहता ही, इसलिए स्वस्थ शरीर पर सौंदर्य का अद्‌भुत निखार था।

देश के दूसरे हिस्सों में, जहाँ मुसलमानों का अमल हो गया था, शायद जवान स्त्रियों की इतनी चुहल-कूद नहीं चलती थी। परंतु शिवाजी महाराज के राज्य में किसी की हिम्मत नहीं थी कि स्त्रियों की तरफ बुरी नज़र से देख ले।

किले के फाटक पर रात-दिन ८ सशस्त्र सिपाहियों का पहरा रहता। उनका हवलदार एक वृद्ध मराठा सरदार था, जो महाराज का अत्यंत विश्वासपात्र था। उन सबके रहने की कोठरियाँ भी फाटक के ऊपर की बुर्जियों पर थीं।

युवती ने कहा—"वावाजी, आज आपने इतनी जल्दी फाटक क्यों वंद कर दिया ? अभी तो सूरज भी नहीं छिपा है, जल्दी खोल दीजिए, मुझे घर जाना है। दो घड़ी पहले बच्चे को पड़ोसिन के पास छोड़कर आयी थी, वह भुखाया होगा।"

हवलदार ने कहा—"वेटी, अगहन लग गया है, इसलिए आज से फाटक एक घड़ी पहले वंद हो जायेगा।"

"वावाजी, कल से जल्दी आ जाऊँगी—आज तो जाने दें, वहाँ मेरा वच्चा रोता होगा।"

"वावली, गढ़ का फाटक खोलना-वन्द करना क्या हमारे वश में है। अब तो तुम कल सुवह ही जा सकोगी।" हवलदार ने जवाव दिया।

युवती ने वहुत आरजू-मिन्नत की, परंतु फाटक नहीं खुला। वहीं वैठकर कुछ देर तक वह रोती रही, फिर अँधेरा होने पर वापस भीतर चली गयी।

दूसरे दिन सुवह फाटक खुलने के समय देखा गया कि वही युवती दूध का कलश लेकर वाहर की तरफ खड़ी थी। पहरेदारों ने हवलदार को बुलाकर उसे दिखाया, सव अचम्भे में थे कि रात में यह किले के भीतर थी, फिर वाहर कैसे गयी।

पूछने पर वह जोर-जोर से हँसने लगी। वाद में वोली—"वावाजी, आपने तो नहीं जाने दिया, पर मैं जादू-मंतर से चली गयी।"

हवलदार डरते हुए उसे दुर्गाध्यक्ष के पास ले गया। उन दिनों दुर्गाध्यक्ष का पद वहुत ऊँचा माना जाता था। लोग उसका अदव करते और भय मानते थे, परन्तु यह अल्हड़ युवती तो जैसे एकदम निडर थी। उसने कहा—"वावाजी, मैंने इन लोगों की वहुत आरजू-मिन्नत की, परन्तु इन्होंने फाटक नहीं खोला। मुझे घर जाना जरूरी था, इसलिए किले की दीवार फाँदकर चली गयी।"

दुर्गाध्यक्ष की समझ में वात नहीं आ रही थी। उसने महाराज को जाकर सारी घटना वतायी। युवती को महल में बुलाया गया।

सुवह का समय था। महाराज भवानी की पूजा करके मंदिर से वाहर आये। देखा, सीधे-सादे वेश में एक अपूर्व सुन्दरी युवती सहमी-सी एक तरफ खड़ी है।

"वेटी, सच-सच वताओ, तुम कौन से फाटक से वाहर गयी ? तुम्हें दंड नहीं मिलेगा।" महाराज ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा।

"वापजी, वहुत खुशामद करने पर भी पहरेदारों ने फाटक नहीं खोले। मुझे भूखे वच्चे की जोर जोर से रोने की आवाज़ सुनाई दी, इसलिए रुक नहीं सकी और दक्षिण की तरफ की दीवार फाँदकर चली गयी। अभी तक मेरी ओढ़नी वहीं टँगी है।"—युवती ने नम्रतापूर्वक वातें स्पष्ट कीं।

किसी को भी उसकी असंभव वात पर विश्वास नहीं हुआ। जिस किले की ऊँचाई १२५ फीट हो, उसे भला कोई कैसे फाँद सकता है।

महाराज ने कहा—"हमारे साथ चलकर वह जगह दिखाओ।"

अब तक युवती का डर मिट गया था। लम्बे-लम्बे डग भरती हुई वह आगे बढ़ी। महाराज, सेनापति और दुर्गाध्यक्ष भी साथ-साथ चले।

सुरक्षा की दृष्टि से बात को गोपनीय रखने का प्रयत्न किया गया, परंतु ऐसी बातें छिपती नहीं—बल्कि बढ़-चढ़कर फैल जाती हैं। एक ने कहा—"इसे भवानी का इष्ट है।" दूसरे ने कहा—"हमने स्वयं देखा है, एक बड़ा बंदर अपने कंधे पर चढ़ाकर इसे नीचे उतार रहा था। शायद स्वयं हनुमानजी थे।"

घटना-स्थल पर आकर देखा गया तो सचमुच ही दक्षिण तरफ की दीवार के एक पत्थर से उसकी ओढ़नी बँधी हुई थी। उसने बताया—"महाराज, मैं इस ओढ़नी से लटककर नीचे कूद गयी, फिर वहाँ से दौड़ती हुई घर चली गयी।"

नीचे खाई में जाकर देखा गया तो वहाँ अभी तक वृक्षों के पत्ते बिखरे और टूटे हुए थे। संयोग से जहाँ वह गिरी थी, वहाँ उन पत्तों का ढेर था, इसलिए चोट नहीं आयी।

किला तैयार हो जाने के बाद सेनापति और दुर्गाध्यक्ष ने महाराज को विश्वास दिलाया था कि दुर्ग पर से चढ़ना-उतरना आदमी तो क्या साँप-गिलहरी के वश की बात भी नहीं है। उन्होंने स्वयं भी निरीक्षण किया था। वे सोचने लगे कि ईश्वर की कृपा से जैसे पंगु पहाड़ लाँघ जाता है, उसी तरह यह युवती इस ८० हाथ ऊँची दीवार पर से कूदकर बच गयी।

अन्त में उन्होंने कहा—"तुमने एक तो राज्य का कानून तोड़ा, दूसरे जान की जोखिम ली; इसलिए तुम्हें कड़ा दंड मिलना चाहिए। फिर भी तुम्हारी छोटी आयु और हिम्मत देखकर हम क्षमा कर दे रहे हैं। पर एक बात पर हमें विश्वास नहीं हो रहा है वह यह कि तुम्हारा गाँव यहाँ से दो मील की दूरी पर है, भला उतनी दूर से तुम्हें बच्चे के रोने की आवाज़ कैसे सुनाई दी?"

महाराज के पैर पकड़कर युवती ने रोते हुए कहा—"मेरे माता-पिता बचपन में ही मर गये थे। आप ही मेरे माँ-बाप हैं। आपके यहाँ पिछले दो वर्षों से दूध बेचकर अपने छोटे से परिवार का भरण-पोषण कर रही हूँ। पति थोड़ी-सी खेती करता है, परंतु पथरीली जमीन के कारण खाने लायक अनाज भी नहीं होता। परमेश्वर की सौगंध खाकर, आपके पैर छूकर कहती हूँ कि मुझे सचमुच ही मेरे बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी थी, तब मैं अपने वश में नहीं रही और जो कुछ कसूर हुआ वह आपको बता दिया—आप जो दंड देंगे—भुगत लूँगी।"

महाराज ने उसको चाँदी की हँसली, नये कपड़े और बच्चे के लिए बहुत प्रकार के खिलौने और मिठाई देकर विदा किया। ●

कालजयी शिवाजी

●

१६५९ में २९ वर्ष के दुवले-पतले शिवाजी ने अफ़ज़लखाँ-जैसे दैत्य को मार गिराया था। खाँन के साथ ४० हजार सुमज्जित फ़ौज थी, जवकि शिवाजी के पास केवल १०-१२ हजार मराठों और मावलों की वेतरतीव सेना। इसी प्रकार देशद्रोही वाजीराव घोरपड़े को तो उसके अपने किले में जाकर मार दिया था। उनके नाम से वीजापुर तथा दिल्ली की फौजों में डर वैठ गया था।

वीजापुर की राजमाता ने अपने सरदारों को इकट्ठा करके वहुत वुरा-भला कहा। लानत-मलानत की। आखिर उनका आला सरदार सिद्दी जौहर शिवाजी को जिंदा या मुर्दा पकड़ लाने के लिए तीस हजार फौज लेकर पन्हालगढ़ किले को वापस लेने को चला और चारों तरफ से घेरा डाल दिया। यह सल्तनत का सवसे वड़ा किला था।

औरंगज़ेव तो पहले से ही वौखलाया हुआ था। अच्छा मौक़ा जानकर उसने अपने मामा आला सेनापति शाइस्ताखाँ को एक लाख फौज के साथ शिवाजी को पकड़ने के लिए भेज दिया। उसकी २० हजार फौजों ने चाकण का किला घेर लिया और ८० हजार फौज के साथ वह स्वयं शिवाजी के पूना के लालमहल में जाकर डट गया। सदा की तरह धर्म-देशद्रोही कुछ राजपूत राजाओं की और कुछ मराठा सरदारों की फौज भी उनके साथ थी। इस प्रकार महाराज चारों तरफ से घिर गये, परन्तु उन्होंने धीरज नहीं खोया।

जव ४ महीने पन्हालगढ़ में घिरे हुए हो गये और उन्हें चाकण किले की हार तथा पूना के समाचार मिले तो उन्होंने सोचा कि अव मुझे जैसे भी हो, यहाँ से निकल जाना चाहिए। परंतु आखिर इतने मजवूत घेरे को तोड़कर जायें भी तो कैसे ?

जुलाई १८६० की एक घनघोर वर्षा की रात, महाराज केवल ६०० सैनिकों के साथ किले के गुप्तद्वार से ५० मील पर के विशालगढ़ किले में जाने के लिए निकले। अँधेरी रात, झाड़-झंखाड़ों का पहाड़ी रास्ता और हर समय दुश्मनों के हमले का डर, परंतु जव तक उन्होंने विशालगढ़ पहुँचकर तोप की आवाज नहीं की, सेनापति वाजी प्रभु ने अपनी थोड़ी-सी फौज के साथ सिद्दी की फौजों को रोक रखा। वे सव के सव मराठे वीर अपने से दस गुने दुश्मनों को मारकर स्वयं भी जूझते हुए मर गये। ऐसा उदाहरण केवल चित्तौड़ के सिसोदियों का ही मिलता है। विशालगढ़ पहुँचकर भी शिवाजी को चैन नहीं थी। उनके मन में पूना के लालमहल में मुग़ल सेनापति का

रहना और वहाँ पर गोवध तथा प्रजा की बहू-बेटियों पर अत्याचार के समाचार सुनकर बड़ी चिंता लगी रहती थी।

लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे—मराठा सैनिक हतोत्साह होकर रायगढ़, विशालगढ़ और प्रतापगढ़ के किलों में बैठे थे। कभी-कदाच बाहर निकलकर मुग़लों के और बीजापुर के गाँवों को लूट लेते थे। शिवाजी ने अपने मुख्य सरदारों को मंत्रणा के लिए रायगढ़ बुलाया। मोरोपंत पिंगले, चिमणाजी, जेधे आदि सब ग़मगीन से बैठे थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि शाइस्ताखाँ को लालमहल से कैसे भगाया जाय।

महाराज ने कहा कि हमारे इन छिटपुट हमलों से विशाल मुग़ल-सेना का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। यद्यपि खाँन अव्वल दर्जे का ऐयाश और शराबी है, परंतु उसके साथ बहादुर पठान और सैयद भी तो हैं। देशद्रोही राजपूतों की फौज भी यथेष्ट मात्रा में है। इनके सिवाय गायकवाड़, कोकाट और जाधवराव की मराठा फौजें भी हैं। कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वह डरकर पूना छोड़कर भाग जाय।

महाराज ने एक योजना प्रस्तुत की। सरदारों ने पक्ष-विपक्ष में अपने मत व्यक्त किये। उनके यहाँ इस बात की स्वतंत्रता थी। आखिर जोखिम-भरी बातें होने पर भी केवल महाराज की बात रही और आगे के लिए तैयारी होने लगी।

सन् १६६२ के चैत्र सुदी ९, भगवान राम का पवित्र जन्म-दिन। महाराज ने माँ साहिबा से सारी योजना बतायी। वे बहुत बहादुर और सूझ-बूझ वाली महिला थीं। शिवाजी की क्षमता और हिम्मत के बारे में भी यथेष्ट जानती थी, परंतु उन्हें एक लाख मुग़ल-फौज के घेरे में जाकर खाँन को मारकर वापस सही-सलामत चले आना असम्भव बात-सी लगी।

परंतु उन्होंने तो तीन वर्ष पहले दैत्य अफ़ज़लखाँ के पास पुत्र को भेजकर इससे भी बड़ी जोखिम ली थी। भारी मन से पुत्र को गले लगाया और उस दुर्गम पथ पर भेज दिया। साथ में केवल चार सौ सैनिक थे। एक लाख के मुकाबले में केवल चार सौ—इतिहास में यह अकेला उदाहरण है। उन दिनों रमजान का महीना था। मुगल सैनिक खूब पेट भरकर और शराब पीकर सोने की तैयारी में थे, अधिकांश सो गये थे, ऐसे में शिवाजी अपने चार सौ सैनिकों के साथ निधड़क होकर मुग़ल-शिविर से होते हुए लालमहल के लिए रवाना हुए।

चौकीदारों ने पूछताछ की तो विश्वास से उत्तर दिया कि बाहर के पहरे पर से जा रहे हैं। आपने तो मजे में रोजा खोल लिया, परंतु हम तो अभी तक भूखे ही हैं। मुगल फौजों को इस असंभव बात पर यकीन भी कैसे होता कि केवल चार सौ व्यक्ति महल पर धावा करने जा रहे हैं।

आला सेनापति और औरंगजेब का मामा शाइस्ता खाँ अपने बड़े हरम में शराब पीकर आराम से सो रहा था कि इतने में शिवाजी खिड़की तोड़कर अन्दर चले गये।

कुछ पहरेदारों को उनको साथ के मावले सैनिकों ने मौत के घाट उतार दिया। लगातार आती हुई आवाजों से खाँन की नींद टूट गयी, अभी होश में भी नहीं आ पाया था कि तलवार लिये शिवाजी दिखाई दिये।

परंतु उसका नसीब अच्छा था कि बेग़मों ने उसी वक्त रोशनी बुझा दी और खाँन पीछे की खिड़की से नीचे कूद गया। उसकी तीन अंगुलियाँ महाराज की तलवार से कट गयीं और लालमहल सचमुच ही खाँन के खून से लाल हो गया।

खाँन बच गया। शिवाजी ने सोचा अब यहाँ ठहरना मौत को बुलाना है। उनके सैनिक भी मराठा आये, मालवा आये, चिल्लाते हुए मुख्य-द्वार पर पहुँच गये। वहाँ महाराज के लिए मोरोपंत और नेताजी घोड़े लेकर तैयार खड़े थे। वे तुरंत रायगढ़ के लिए रवाना हो गये।

मुगल-सैनिक तो सकते में आ गये, कहने लगे—"सचमुच ही कम्बख्त शिवाजी के वश में जिन्नात है, नहीं तो इतने बड़े पहरे में खाँन की अँगुलियाँ तराश कर वापस कैसे चला जाता।"

इधर खाँन घायल होकर गालियाँ बक रहा था। दो बजे रात को बहुत से मुग़ल-सैनिक शिवाजी को पकड़ने निकले।

परंतु वे तो पहले से ही पूरी योजना बनाकर तैयार थे। बहुत से बैलों को इकट्ठा कर रखा था। उनके सींगों पर कपड़ा लपेट कर तेल में भिगोकर आग लगा दी। बैल जोर से भागने लगे। मुग़ल-सैनिकों ने अँधेरी रात में मशालों की रोशनी देखकर समझा कि मराठे भाग रहे हैं। उन्होंने जोर से पीछा किया। भोर के झुटपुटे में देखा कि मराठों की जगह बैल और भैंसें हैं। वे शर्मिंदा होकर वापस आ गये।

इधर महाराज ने रायगढ़ पहुँचकर माताजी के चरण स्पर्श किये। कहने लगे—"माँ साहिबा, आपकी दया से हम सब सही-सलामत वापस आ गये हैं। आपने तो भगवान् रामजन्म का व्रत रखा है, परंतु मैं तो भूख से बेहाल हूँ; अपने हाथ का प्रसाद देने की कृपा करें।"

जीजा माता शिवाजी को एक छोटे बालक की तरह पास में बैठाकर खिला रही थी और लालमहल का वाकया सुनकर हँस रही थी। शिवाजी महाराज की वीरता की बातें सुनकर सताये हुए लोगों में विश्वास पैदा हो रहा था। वे खुश हो रहे थे कि उनका भी कोई रक्षक पैदा हो गया है।

अफ़जलखाँ और सिद्दी जौहर से भी लालमहल का हमला ज्यादा महत्त्वपूर्ण था। शाइस्ताखाँ की हिम्मत जवाब दे गयी। अब पूना या महाराष्ट्र में रहने में उसे जान की जोखिम लगी। थोड़े दिनों में ही वह पूना छोड़कर आगरा चला गया।

●

शिवाजी और धोखेबाज अंग्रेज

"कहते क्या हैं, दारोजी, क्या सचमुच अंग्रेज हमारे विरुद्ध सिद्दी जौहर से मिल गये और अपनी बड़ी-बड़ी तोपें लड़ाई में ले आये ? अभी डेढ़ महीने पहले ही तो हमने उनके जहाज छोड़े हैं। हमारे पास वे बहुत प्रकार की भेंट लाये थे, खुशामद कर रहे थे। उन्होंने संधिपत्र पर सौगध खाकर हस्ताक्षर किये थे कि वे बीजापुर के विरुद्ध हमें मदद देंगे।"

"महाराज, आपने तो कहा भी था कि ये अंग्रेज बड़े धूर्त होते हैं, इनसे सावधान रहना चाहिए। परंतु मैंने गलती से इनकी बात का विश्वास कर लिया। अब जब उन्होंने देखा कि सिद्दी की फोजें हमसे तगड़ी हैं, शिवाजी किले में घिर गये हैं, तो उसकी सहायता पर आ गये।"

मार्च, १६६० में सिद्दी ने तीस हजार फौज के साथ पन्हालगढ़ पर हमला किया था। राजापुर अंग्रेजी गोदाम का एजेन्ट बेईमान हेनरी रेंविंगटन अपनी अंग्रेजी फौजी टुकड़ी के साथ उसमें मिल गया था। किले पर तोपों की मार कर रहा था।

जुलाई में किसी प्रकार महाराज किले से निकलकर विशालगढ़ पहुँच गये। किला सिद्दी के हाथ आया। लूट की सामग्री में अंग्रेजों को भी यथेष्ट हिस्सा मिला। महाराज के मन में कसक थी, नेताजी पालकर से कहने लगे कि "हमने इनकी कोठियों को यह जानकर नहीं लूटा कि हमारी लड़ाई तो मुग़लों से है, ये बेचारे तो विदेशी व्यापारी हैं। राजापुर में भी इनके साथ रियायत बरती। उसका बदला इन्होंने इस प्रकार विश्वासघात करके लिया ? खैर, समय आने पर इनसे बदला लिया जायगा।"

और सचमुच थोड़े दिनों में ही बदला लेने का समय आ गया। मराठा सैनिकों ने राजापुर स्थित अंग्रेजों के गोदाम पर धावा बोल दिया। लाखों का सोना-चाँदी और दूसरा सामान मिला। रेंविंगटन तथा दूसरे अंग्रेज महाराज के सामने हाथ-पाँव बाँधकर हाजिर किये गये।

हेनरी रेंविंगटन तथा उसके साथी गिड़गिड़ाकर नतजानु होकर क्षमा माँगने लगे। यद्यपि महाराज शांत स्वभाव के थे, परंतु उस दिन तो उन्हें सचमुच बहुत क्रोध हो आया। कहने लगे—"कमबख्तो, मैं समझता था तुम लोग व्यापारी हो, आयात-निर्यात का धंधा करते हो, राजनीति से तुम्हें कोई मतलब नहीं है। यद्यपि मुझे यह सूचना कई

बार मिली कि तुमलोगों में समुद्री डाकू भी हैं, मेरे समुद्रतट की गरीब प्रजा को तंग करते हो, परंतु मैंने उन अफवाहों पर ध्यान नहीं दिया। इस बार केवल एक महीने पहले ही तो तुमने वचन दिया था कि सिद्दी से जब हमारा जंग होगा, तुम अपनी तोपों सहित हमारे पास आ जाओगे। परंतु जब तुमने देखा कि शिवाजी पन्हालगढ़ में घिर गया है तो उस संकट के समय तुम अपनी तोपें लेकर सिद्दी के साथ चले गये। मेरा मन कहता है कि जिन तोपों से तुमने पन्हालगढ़ पर गोले छोड़े, उन्हीं तोपों के मुँह के आगे बाँधकर तुमलोगों को बारूद से उड़ा दिया जाय। तुम खटमलों की तरह धोखे से काटते हो, इसलिए तुम्हें खटमलों की कोठरी में रखा जायगा। सूरत को सूचना भेजी गयी है। अगर वे हमारे हर्जाने की रकम जुर्माने सहित दे देते हैं तो तुम्हें छोड़ने का विचार किया जायेगा।''

एक वर्ष से जेल में पड़े-पड़े अंग्रेज सड़ रहे थे। वहाँ न तो शराब थी और न नाच-रंग। यद्यपि शारीरिक दंड तो उन्हें नहीं दिया जाता था, परंतु खाना-पीना तीसरे दर्जे के कैदियों का सा था।

ज्वार की मोटी रोटी और छिलके सहित चने की दाल। बार-बार सूरत में अपने बड़े साहब को पत्र लिख रहे थे कि ''शिवाजी से समझौता करके हमें इस दोज़ख से निकलवाइए। हमारा वजन घटकर आधा रह गया है। हमारे शरीर खटमलों के काटने से सूज गये हैं। हमें बिना सालन के चोकड़ की मोटी रोटियाँ मिलती हैं।''

सूरत से महाराज के पास कई बार उन्हें छोड़ने की दरख्वास्त आयी। परंतु वे हर्जाना देने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि जो कुछ राजापुर में हुआ है, वह बिना सूरत की मंजूरी के किया गया है।

इस बीच जेल में दो अंग्रेज मर गये और हेनरी रेविंगटन बीमार रहने लगा।

उसने महाराज को अर्जी भेजी कि उसके और साथी तो जेल में हैं ही, उसे दो महीनों की पैरोल पर छुट्टी दी जाय, वह सूरत जाकर प्रेसिडेन्ट एन्ड्रूज से मिलकर हर्जाने की शर्तें तय करेगा।

उसे छुट्टी मिल गयी। वह सूरत की बड़ी कोठी में गया। गंदे कपड़े, सूखा चेहरा और सूखा हुआ शरीर। पहले तो पहचानने में ही नहीं आया। जब उसने जेल के कष्टों का वर्णन किया तो बड़ा साहब उस पर बिगड़ गया। कहने लगा—''बेवकूफ, तुम्हें शिवाजी से लड़ने को किसने कहा था? क्यों उस बाघ की माँद में गये? हम धीरे-धीरे पैर फैला रहे थे कि इस बीच में यह झंझट मोल लेकर तुमने उन्हें हमारे विरुद्ध कर दिया। वह कई लाख का सामान तो राजापुर गोदाम से ले गया और अब कई लाख की माँग और करता है। किसके हुक्म से तुमने सिद्दी को तोपें भेजीं और लड़ाई करने गये? जो किया उसका फल भोगो। यहाँ से कुछ नहीं हो सकता।''

रेंविगटन फिर से शिवाजी के कैदखाने में किसी भी हालत में नहीं जाना चाहता था। थोड़े दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गयी और इस प्रकार वह घोर कष्टों से मुक्ति पा गया। बाकी अंग्रेज कैदी जेल में रस्सियाँ बँटते और चक्कियाँ पीसते रहे। धीरे-धीरे उन्हें जेल में ३३ महीने गुजारने पड़े। इन सभी की स्थिति खतरनाक हो गयी। आखिर एक दिन महाराज को इन पर दया आयी। उन्होंने मुचलके लेकर फरवरी सन् १६६३ ई० को सभी को मुक्त कर दिया।

•

शिवाजी का ऐतिहासिक पत्र

•

मामा शाइस्ताखाँ पूना से भागकर दिल्ली आया और औरंगजेब को लालमहल पर शिवाजी के हमले की घटना बतायी, साथ ही अपने दाहिने कटे हाथ को दिखाया। बहुत ग़मगीन था आला सेनापति। इतने में सूरत की लूट की खबर पहुँची। औरंगजेब गुस्से से बौखला गया। बीस हजार की बेतरतीब मावलों की भीड़वाला शिवाजी मुग़ल बादशाह की एक लाख बेहतरीन फौज से लोहा ले रहा था। बात यकीन करने की नहीं थी, परंतु थी सच।

औरंगजेब अद्‌भुत कूटनीतिज्ञ था। उसने सोचा कि इस बार हिंदुओं की बड़ी फौज दक्षिण में भेजी जाय। दोनों तरफ़ हिंदू मरेंगे। आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह को यह भार सौंपा गया। वे मुगलों के बड़े सेनापति थे। पाँच पीढ़ी से उनकी गुलामी करते आ रहे थे। सूझ-बूझ और सैनिक-संधान में वे अद्वितीय गिने जाते थे।

औरंगजेब अव्वल दर्जे का धूर्त और वहमी था। सावधानी के लिए उसने एक दूसरे सेनापति दिलेरखाँ को राजा के साथ लगा दिया। फौज अधिकांश हिंदुओं की थी, १६६५ की फरवरी में मुगल फौज बुरहानपुर पहुँच गयी। यह दक्खिन का दरवाजा गिना जाता था।

राजा जयसिंह शिवाजी से मैदान में लड़ना चाहता था, परंतु शिवाजी उससे भी अधिक बुद्धिमान थे। वे अपनी सीमित शक्ति को जानते थे। बीजापुर का डर भी बना हुआ था। कहीं दो पाटों के बीच में नहीं फँस जायँ, यह चिंता थी।

उन्हें यह भी सूचना मिल गयी थी कि इस बार अधिकांश हिंदू फौजें हैं। उनके पास उस समय बीस हजार फौज थी, परंतु बेहतरीन हथियारों की कमी थी, जबकि मुगल-फौज में हाथी, घोड़े, ऊँट, छोटी-बड़ी तोपें और बंदूकें बड़े पैमाने पर थीं। वे जयसिंह को लम्बे अरसे तक उलझा कर रखना चाहते थे।

यह भी जानते थे कि जयसिंह कट्टर धार्मिक है, नित्य पूजा-पाठ करता है और गोविंद-देव जी का भक्त है। औरंगजेब ने पिछले वर्षों में मथुरा, काशी तथा खास जयपुर के बहुत मंदिर तोड़े हैं, इसलिए मन ही मन दुखी भी है। वे उसकी हिंदुत्व की भावना जागृत करके एक बड़ा सम्मिलित मोर्चा बनाना चाहते थे। उन्हें यह आकांक्षा नहीं थी कि वे स्वयं नेता बने। मेवाड़ के राणा राजसिंह, राजा जयसिंह या जोधपुर के राजा

जसवंत सिंह में से किसी को भी नेता बनाने को तैयार थे। उनका एकमात्र लक्ष्य था कि किसी तरह बढ़ती हुई विदेशी मुग़ल-शक्ति को छिन्न-भिन्न किया जाय, जिससे हिंदू-धर्म मजबूत होकर देश में आर्य-संस्कृति फले-फूले।

शिवाजी ने सोचा क्यों न एक बार राजा जयसिंह से मिलकर सारी बातें स्पष्ट कर ली जायें। आखिर वह भी देश-धर्म की भली-बुरी सोचता ही है, उसके मन में भी इष्टदेवता के मन्दिर टूटने का भय तो है ही।

आख़िर उन्होंने जयसिंह को वह प्रसिद्ध पत्र लिखा, जो इस समय भी राष्ट्रीय संग्रहालय में मौजूद है। इसे पढ़ने पर पता चलता है कि धर्म के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति इस महामानव के मन में थी।

रायगढ़, फरवरी १६६५।

"ऐ रामचन्द्र के हृदयांश! तुझसे राजपूतों का सर उन्नत है। बुद्धिमान जयशाह! शिवा का प्रणाम स्वीकार कर। जगत का जनक, तुझको धर्म-न्याय का मार्ग दिखायें।

मैंने सुना है कि तू मुझ पर आक्रमण करने एवं दक्षिण प्रांत को विजय करने आया है। हिंदुओं के हृदय तथा आँखों के रक्त से तू संसार में यशस्वी हुआ चाहता है। पर तू यह नहीं जानता कि यह तेरे मुख पर कालिख लग रही है। क्योंकि इससे देश तथा धर्म आपत्ति में पड़ जायेंगे। यदि तू स्वयं दक्षिण-विजय करने आता तो मेरे सिर और आँख तेरे रास्ते के बिछौने बन जाते। मैं तेरे हमरकाब बड़ी सेना लेकर चलता और एक सिरे से दूसरे सिरे तक भूमि तुझे विजय करा देता। पर तू तो औरंगजेब की ओर से आया है। अब मैं नहीं जानता कि तेरे साथ कौन-सा खेल खेलूँ। यदि मैं तुझसे मिल जाऊँ तो यह पुरुषत्व नहीं है। क्योंकि पुरुष लोग समय की सेवा नहीं करते, सिंह लोमड़ीपना नहीं करते; और यदि मैं तलवार तथा कुठार से काम लेता हूँ तो दोनों ओर हिंदुओं को ही हानि पहुँचती है। वह न्याय तथा धर्म से वंचित पापी जो कि मनुष्य के रूप में राक्षस है; जब अफ़ज़लखाँ से कोई श्रेष्ठता न प्रकट हुई, न शाइस्ताखाँ की कोई योग्यता देखी तो तुझको हमारे युद्ध के निमित्त भेजा है। वह स्वयं तो हमारे आक्रमण को सहने की योग्यता रखता नहीं। वह चाहता है कि हिन्दुओं के दल में कोई बलशाली संसार में न रह जाय, सिंहगढ़ आपस में लड़-भिड़कर घायल तथा शांत हो जाय। यह गुप्तभेद तेरे सिर में क्यों नहीं बैठता।

तूने संसार में बहुत भला-बुरा देखा है। तुझे यह नहीं चाहिए कि हम लोगों से युद्ध करें और हिंदुओं के सिरों को धूल में मिलावें। व्याघ्र मृग आदि पर व्याघ्रता करते हैं, सिंहों के साथ गृह-युद्ध में प्रवृत्त नहीं होते। यदि तेरी काटनेवाली तलवार में पानी है तो तुझको चाहिए कि धर्म के शत्रु पर आक्रमण कर। तूने जसवंत सिंह को धोखा दिया तथा हृदय में ऊँच-नीच नहीं सोचा। तू लोमड़ी का खेल खेलकर अभी अघाया नहीं है, सिंहों से युद्ध के निमित्त ढिठाई करने आया है। तुझको इस दौड़-धूप से क्या मिलता

है ? तू उस नीच की कृपा का क्या अभिमान करता है ? तू जानता है कि कुमार छत्रसाल पर वह किस प्रकार से आपत्ति पहुँचाना चाहता था। तू जानता है कि दूसरे हिंदुओं पर भी उस दुष्ट के हाथ से क्या-क्या विपत्तियाँ नहीं आयीं। मैंने माना कि तू ने उससे संबंध जोड़ा है, पर उस राक्षस के लिए यह बंधन इज़ारबंद से अधिक दृढ़ नहीं है। वह तो अपने इष्ट-साधन के लिए भाई के रक्त तथा बाप के प्राणों से भी नहीं डरता।

यदि तू पौरुष तथा बड़ाई मारता है तो तू अपनी जन्मभूमि के संताप से तलवार को तपा तथा अत्याचार से दुखियों के आँसू पर पानी दे। यह अवसर हमलोगों के आपस में लड़ने का नहीं है, क्योंकि हिंदुओं पर इस समय बड़ा कठिन कार्य पड़ा है। हमारे लड़के देश, धन, देव, देवालय तथा पवित्र देव-पूजक इन सब पर आपत्ति आ पड़ी है तथा उनका दुःख सीमा तक पहुँच गया है। यदि कुछ दिन उसका काम ऐसा ही चलता रहा तो हमलोगों का कोई चिह्न पृथ्वी पर न रह जायेगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि मुट्ठी भर मुसलमान हमारे इतने बड़े देश पर प्रभुता जमावें। यदि तुझको समझ है तो देख कि वह हमारे साथ कैसी धोखे की चालें चलता है तथा हमारे सिरों को हमारी ही तलवारों से काटता है।

हमलोगों को हिंदुस्तान तथा हिंदू-धर्म के निमित्त अत्यधिक प्रयत्न करना चाहिए। यदि तू जसवंतसिंह से मिल जाय और राणा से भी एकता का व्यवहार कर ले तो आशा है कि बड़ा काम निकल जाय। चारों तरफ से धावा करके तुम लोग युद्ध करो। उस साँप के सिर को पत्थर के नीचे दबा लो। मैं इस ओर भाला चलानेवाले वीरों के साथ इन दोनों बादशाहों का भेजा निकाल डालूँ। मेघों की भाँति गरजनेवाली सेना से मुसलमानों पर तलवार का पानी बरसाऊँ। इसके पश्चात् कार्यदक्ष शूरों के साथ लहरें लेती हुई तथा कोलाहल मचाती हुई नदी की भाँति दक्षिण के पहाड़ों से निकल कर मैदान में आऊँ और अत्यंत शीघ्र तुमलोगों की सेवा में उपस्थित होऊँ। हमलोग अपनी सेनाओं की तरंगों को दिल्ली में उस जर्जरीभूत घर में पहुँचा दें। उसकी न अत्याचारी तलवार रह जाय और न कपट का जाल। यह काम बहुत कठिन नहीं है, केवल यथोचित हृदय, हाथ तथा आँख की आवश्यकता है। दो हृदय एक हो जायँ तो पहाड़ को तोड़ सकते हैं, समूह के समूह को तितर-बितर कर सकते हैं। इस विषय में तुझसे बहुत कुछ कहना है, जिसको पत्र में लिखना सम्मत नहीं है। मैं चाहता हूँ कि हम लोग परस्पर बातचीत कर लें जिससे कि व्यर्थ में दुःख और श्रम न मिले। यदि तू चाहे तो मैं तुझसे साक्षात् बातचीत करने आऊँ और तेरी बातों को श्रवण करूँ।

तलवार की तथा धर्म की शपथ करता हूँ कि इससे तुझ पर कदापि आपत्ति नहीं आयेगी। अफ़जलखाँ के परिणाम से तू शंकित मत हो, क्योंकि उसमें सच्चाई नहीं थी।

वह मेरे लिए घात लगाये हुए था। यदि मैं पहले ही उस पर हाथ न फेरता तो इस समय यह पत्र तुमको कौन लिखता ? यदि मैं तेरा उत्तर यथेष्ट पाऊँ तो तेरे समक्ष रात्रि को अकेले आऊँ। मैं तुझको वे गुप्त पत्र दिखाऊँ जो कि मैंने शाइस्ताखाँ की जेब से निकाल लिये थे। यदि यह पत्र तेरे मन के अनुकूल न पड़े तो फिर मैं हूँ और काटने-वाली तलवार तथा तेरी सेना। कल जिस समय सूर्य अपना मुँह संध्या में छिपा लेगा उस समय मेरा खंग म्यान को फेंक देगा।"

—शिवाजी

शिवाजी का पत्र पढ़ने के बाद जयसिंह के मन में उनके प्रति आदर-भाव बढ़ गया। वह मन ही मन महसूस करने लगा कि वास्तव में ही वह अकेला वीर युवक मुग़लों की बड़ी हस्ती से हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए लड़ रहा है। परंतु जयसिंह में यह हिम्मत नहीं थी कि औरंगजेब से अलग हो जाय।

नयी संधि के अनुसार शिवाजी अपनी फौजों के साथ जयसिंह के साथ आ गये थे। परंतु उसका सहायक सेनापति दिलेरखाँ हमेशा उनकी चुगली खाया करता था, मन में वैर रखता था और मौका देखकर मार देना चाहता था।

एक दिन बादशाह का पत्र आया कि शिवाजी और उनके पुत्र को आगरा भेज दो, हम उनसे मिलना चाहते हैं। उनको इज्जत और मनसब भी देंगे।

जीजा माता आगरे भेजने के पक्ष में नहीं थी, परंतु महाराज ने कहा कि भवानी रक्षा करेंगी, आप डरें नहीं। हमें उत्तर के हिंदू सरदारों के मनोभाव जानने का भी मौका मिलेगा। राजा जयसिंह ने अपने इष्टदेव गोविंददेवजी की सौगंध खाकर उनकी रक्षा का वचन दिया। अपने पुत्र रामसिंह को सारी बातें लिखकर भेज दी। ५ मार्च, १६६६ को अपने ३५० साथियों के साथ महाराज और ९ वर्ष का बालक शम्भाजी राजगढ़ से आगरा के लिए रवाना हुए। ११ मई को वे सब आगरा पहुँच गये। दूसरे दिन बादशाह का ५०वें जन्म-दिन का जलसा था। शिवाजी पुत्र के साथ दरबार-ए-आम में गये। शहर के रास्तों में लोग उनकी जय-जयकार कर रहे थे। साथ के मुसलमान सिपाहियों को यह बहुत बुरा लग रहा था।

दरबार में उन्हें तीन हजारी सरदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया। औरंगजेब ने आदाब का जवाब भी नहीं दिया। वे गुस्से से काँपने लगे। पास में खड़े रामसिंह को बुरा-भला कहा और जल्दी से बिना सलाम किये दरबार से बाहर निकल कर आ गये।

यह सरासर बादशाह की तौहीन थी। वे अपने डेरे पर आ गये। थोड़ी देर में ही चारों तरफ से मुग़ल सैनिकों ने उनके डेरे को घेर लिया। उन्हें जीजा माता की कही हुई चेतावनी याद आ गयी, परंतु अब क्या हो सकता था ? अब तो वे पिंजरे में बंद थे।

यद्यपि औरंगजेब खुद झगड़ा नहीं बढ़ाना चाहता था, परंतु उसका वजीर जाफर खाँ, जोधपुर के राजा जसवंतसिंह और शाहजादी जहानआरा सब शिवाजी को खत्म

कर देना चाहते थे। इसलिए उनकी सलाह मानकर उसने आगरे के कोतवाल अंदाजखाँ के जिम्मे उनको सौंप दिया। पाँच हजार पठान सिपाही चारों तरफ रात-दिन पहरे पर रहने लगे।

रामसिंह को पता चल गया कि जल्दी ही शिवाजी और सम्भाजी की हत्या की जायगी। उसे अपने पिता के दिये हुए वचनों की याद आयी। उसने अपने कुछ विश्वस्त सैनिक शिवाजी के मकान पर रख दिये।

शायद अब तक वे मार दिये जाते, परंतु औरंगजेब राजा जयसिंह को नाराज़ नहीं करना चाहता था। आगरे में हिंदू फौज के सिपाही भी शिवाजी का आदर करते थे। इसलिए मौके की ताक़ में था।

रामसिंह शिवाजी से बराबर मिलता रहता। मन में बहुत दुःखी था, परंतु कुछ उपाय तो था नहीं।

एक महीना उन्हें कैद में हो गया। चारों तरफ कड़ा फौजी पहरा, कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। परंतु वे संकट में हिम्मत हारने वाले नहीं थे।

९ जून को उन्होंने अपने साथ के ३५० सैनिकों को दक्खिन भेजने की अनुमति माँगी। औरंगजेब तो यही चाहता था।

सारे मराठा सैनिक दक्खिन न जाकर योजनानुसार आगरे के पास छिपकर इधर-उधर फैल गये। इधर शिवाजी की हत्या की सारी व्यवस्था हो गयी। उन्हें दफ़नाने का बंदोबस्त भी हो गया।

रामसिंह को गुप्तचरों द्वारा सारी बातों का पता चल गया। उसने पिता को बादशाह के विश्वासघात के बारे में ब्यौरेवार समाचार दे दिया। एक दिन शिवाजी ने उसको बुलाकर कहा कि "तुम मेरे छोटे भाई की तरह हो। मैं तुम्हें किसी प्रकार के मुगालते में नहीं रखना चाहता। बादशाह से तुम मेरी रक्षा की जिम्मेदारी से छुट्टी ले लो, फिर मैं जैसा ठीक समझूँगा करूँगा।"

वर्षा ऋतु शुरू हो गयी, जेल में ढाई महीने बीत गये। शिवाजी जान-बूझकर अस्वस्थ रहने लगे; दिन-रात चद्दर ओढ़े सोये रहते। वैद्य-हकीम आने लगे। बादशाह और उमरा खुश थे कि शायद थोड़े दिनों में अपने-आप ही शिवा मर जायगा, हत्या का बखेड़ा नहीं करना पड़ेगा।

भाद्र वदी ८, भगवान श्रीकृष्ण का जन्म-दिन। महाराज के स्वास्थ्य-लाभ के लिए हिंदू-मुसलमान सबको प्रचुर अन्न-दान दिया जाने लगा।

शुरू में तो टोकरों को खोलकर पहरेदारों ने देखा, परंतु उनका तो जैसे अंत ही नहीं था, लगातार आते ही जा रहे थे। इसलिए वे थक कर बैठ गये।

इन्हीं पिटारों में से दो में शिवाजी और शम्भाजी बैठ गये और बात की बात में मुगलों के पहरे से बाहर निकल गये।

धनघोर वर्षा—अँधेरी रात। वे औरंगजेव रूपी कंस के जेलखाने से निकल कर अपने सैनिकों के पास सही-सलामत पहुँच गये।

शिवाजी की जगह उन्हीं की शक्ल का हीरोजी फरजंदे चद्दर ओढ़कर लेट गया।

वाहर आकर टहलुआ मदारी पहरेदारों से कहने लगा कि "भाई, महाराज तो शायद ही आज की रात काटें।"

मुसलमान सरदार और पहरेदार खुश थे कि चलो रोज की बला मिटी।

दूसरे दिन सुवह सदा की तरह फौलादखाँ जव महाराज के कमरे में गया तो पलंग खाली था। नीचे-ऊपर चारों तरफ देखा परंतु शिवाजी या शम्भाजी हों तो मिलें।

डरते हुए औरंगजेव के पास जाकर सूचना दी। वादशाह ने सर पीटते हुए कहा—"वेवकूफो, नमकहरामो, तुमलोगों ने यह क्या किया? क्या वह कम्वख्त जमीन में धँस गया या आसमान में उड़ गया। जव तक उसको पकड़ कर नहीं लाते तव तक मुझे अपना काला मुँह मत दिखाना।"

यद्यपि रामसिंह की मनसवदारी तो छिन गयी, परंतु वह मन ही मन खुश था कि पिता की वात रह गयी।

चारों तरफ मुग़ल-सैनिक घोड़े लेकर शिवाजी को पकड़ने निकले।

इधर शिवाजी ने दाढ़ी-मूँछें मुड़ाकर साधु का वेष वना लिया। शम्भाजी को एक विश्वस्त मराठा-परिवार में मथुरा में छोड़कर वे काशी की तरफ रवाना हो गये। रास्ते में विना आराम किये लगातार चलकर २५ दिनों में राजगढ़ पहुँचे। माता जीजा वाई को सूचना भिजवायी कि काशी के कुछ साधु-महात्मा आये हैं जो माँजी साहवा से मिलने की जिद्द किये हुए हैं।

महल के भीतर आकर उनमें से एक साधु माँजी के पैरों में गिर पड़ा। एक वार तो वे वड़े धर्मसंकट में पड़ गयीं, परंतु चाहे किसी भेष में हो पुत्र तो पहिचान में आता ही। दोनों तरफ से हर्षाश्रुओं के साथ हिचकियाँ वँध गयीं। शम्भाजी को भी कुछ दिनों वाद एक विश्वस्त व्यक्ति के साथ राजगढ़ वुला लिया गया। औरंगजेव के मन में मरते समय तक इस वात का पछतावा रहा कि शेर पिंजड़े से वाहर भाग गया।

●

प्यार की कीमत

दिल्ली के लाल किले में शाहजादी जैबुन्निसा का महल। जनवरी की हृत्कंप ठंढ और सनसनाती हुई सर्द हवाएँ। यद्यपि सूरज ऊपर चढ़ आया था परंतु शाहजादी अपने महबूब आकिल खाँ की बाँहों में अलसायी हुई लेटी थी।

अचानक बाँदी गुलरुख ने दौड़ते हुए आकर कहा—"शाहजादी साहिबा, गजब हो गया, बादशाह हुजूर इस तरफ आ रहे हैं!"

शाहजादी घबरायी हुई चारों तरफ देखने लगी। सामने के गुसलखाने में एक बड़ी देग पानी से भरी हुई रखी थी। जल्दी से अकिल खाँ को उसमें छिपा दिया।

नंगी तलवारों से लैस ८-१० तातारी बाँदियों और ख्वाजासरों के साथ औरंगजेब ने प्रवेश किया। हरम की बाँदियाँ सहमी-सी एक तरफ खड़ी हो गयीं। शाहजादी ने झुककर कोर्निश करते हुए कहा—"अब्बा हुजूर ने इस बेवक्त कैसे तकलीफ की?"

बादशाह ने चारों तरफ नजर दौड़ाते हुए कुटिल मुस्कान में कहा, "पहरेदारों ने खबर दी है कि सल्तनत का एक बागी इस तरफ आया है।"

सफेद मोतियों के से दाँतों में बरबस लायी हुई हँसी में शाहजादी ने जवाब दिया कि "भला इस तरफ आने की जरूरत किस मूजी को हो सकती है?"

पास में शाहजादी की मुँहलगी बाँदी गुलरुख खड़ी थी। बादशाह ने डपटते हुए कहा—"तेरे बच्चे और खाविन्द को कोल्हू में पिरा दिया जायगा और तेरी बोटी-बोटी जंगली कुत्तों से नुचवा दी जायेगी, नहीं तो बता कि वह बागी कहाँ छिपा हुआ है?" डर से काँपती हुई उसने देग की तरफ इशारा कर दिया।

"सूरज इतना ऊपर चढ़ आया और अभी तक शाहजादी ने गुसल नहीं किया?"

"अब्बा हुजूर, जरा सर भारी था इसलिए उठने में देर हो गयी। गुसल करके जल्दी ही आपके हुजूर में हाजिर होती हूँ।"

बादशाह ने भट्ठी की तरफ देखते हुए कहा कि "अभी तक तो आग ही नहीं जलायी गयी है फिर भला कब पानी गर्म होगा और कब शाहजादी गुसल करेंगी।"

बाँदियों को हुक्म हुआ कि देग के नीचे की भट्टी में बहुत-सी लकड़ियाँ जलाओ जिससे जल्द पानी गर्म हो जाय।

थोड़ी देर में ही आग की लपटें उठने लगीं। बादशाह पहरे पर तातारी बाँदियों को छोड़कर अपने महल में चला गया।

गर्म भाप से देग का ढक्कन उठने-गिरने लगा। शाहजादी ने देग के पास आकर धीरे से कहा—"आकिल, मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ में है। तिल-तिल करके जल जाना, मगर ऐसा न हो कि मुँह से आह निकल जाय।"

थोड़ी देर में ही शाहजादी जेबुन्निसा मूर्छित होकर एक तरफ गिर पड़ी। जब होश आया तो देखा कि किसी समय की दी हुई प्यार की निशानी उसका जड़ाऊ कंगन देग के वाहर पड़ा हुआ है।

पिछले वारह महीनों की वातें चित्रपट की तरह उसके मानस पर उभर आयीं। अव्वा हुजूर की तवियत नासाज थी। वे दिल्ली की खटपट से कहीं दूर जाकर आराम लेना चाहते थे। जेबुन्निसा उसकी सबसे प्यारी औलाद थी। निगहदारी और बंदोवस्त के लिए उसे साथ लिया और एक वड़े काफिले के साथ लाहौर आ गये।

हकीमों ने वादशाह को दरिया में घूमने की सलाह दी, इसलिए शाम होते ही एक बड़े वजरे में रावी में घूमने जाते। साथ में रहती उनकी वेगमें और शाहजादी जेबुन्निसा।

कभी-कदास सल्तनत के कामों से उन्हें रुकना पड़ता तव शाहजादी अकेली ही चली जाती। उसे रावी की चंचल लहरों से प्यार-सा हो गया था।

उसने महसूस किया कि जिस दिन बादशाह नहीं आते, उसे किले की वुर्ज की तरफ से एक दर्द भरी गज़ल सुनने को मिलती है। गायक की लय और तान मँजी हुई थो, परंतु उसमें उदासी की तड़पन-सी रहती। गज़ल सुनकर उसके मन पर उदासी छा जाती। गज़ल के बोल कुछ इस प्रकार के होते—

"ऐ आकाश में उड़नेवाले पंछी! तू कितना सुन्दर है, मैं तुम्हें वहुत प्यार करता हूँ, परंतु तू ऊँचे आकाश में है, मेरी पहुँच से बहुत दूर। ऐसा लगता है कि जीवन में कभी तुझे नजदीक से नहीं देख पाऊँगा, न तेरे सुन्दर मुलायम पंखों पर हाथ फेर सकूँगा। इसी तरह घुटन से भरी मेरी जिंदगी जल्द ही खत्म हो जायेगी। मेरी आरजू है कि अगर कभी मौका मिले तो पास के बगीचे से अपनी चोंच में एक फूल लाकर मेरी कब्र पर चढ़ा देना। इससे मेरी तड़पती हुई रूह को राहत मिलगी, यही मेरा सवसे बड़ा सकून होगा।"

कभी-कभी उसके भाव इस प्रकार के होते—"ऐ हवाओ, मेरा प्यारा नजदीक होते हुए भी बहुत दूर है, वह मेरी जुदाई के दर्द को पहचानता नहीं है। क्या तुम उसके दरवार में मेरी तड़पन और दर्द के बारे में बयान कर दोगी?"

शाहजादी ने गुलरुख को उस शख्स को ढूँढ़कर हाजिर करने के लिए कहा, परंतु उसका कुछ भी पता नहीं चला।

आखिर लाहौर के सूबेदार आकिल खाँ की तलबी हुई। वह कोर्निश करके दस्त-वस्ता एक तरफ़ खड़ा हो गया। २५-२७ का सिन, गठीला वदन, सुन्दर घुंघराले वाल, गोरा रोबदार चेहरा, परंतु गमगीन-सा दिखाई देता हुआ।

शाहजादी वजरे में थी और वह पास की नौका में। पर्दे में से गुस्सा भरी आवाज आयी, "कौन है वह शख्स जो अपनी दर्द भरी गजलें गाकर हमारी तनहाई में दखल डालता है ? हम यहाँ आराम करने आये हैं न कि मजनुओं का दुःख-दर्द सुनने ? उसे कल तक हाजिर किया जाय, यह हमारा हुक्म है।"

"गुस्ताखी माफ हो, शाहजादी हुजूर, वह एक पागल आदमी है। उसे आज रात को ही पकड़ कर दूर भेज दिया जायगा।"

"हमें लगता है कि हमारे सूबेदार वात को टालने की कोशिश कर रहे हैं। हम उस अभागे से वात करके उसके रंजोग़म के वारे में सुनना चाहेंगे, अगर हो सका तो उसकी तकलीफ दूर करने की कोशिश की जायगी।"

आकिल खाँ ने देखा शाहजादी के हुक्म में एक प्रकार की आरजू है। मन को कड़ा करके सहमते हुए कहने लगा, "शाहजादी हुजूर, यह खता इस गुलाम से हुई है, यह सर हाजिर है, भले ही कलम करा दिया जाय।"

शाहजादी को भी कुछ अन्देशा तो था ही, उसका दिल भर आया। कुछ वर्षों पहले ही उसकी मँगनी ताऊ द्वारा शिकोह के शाहजादे सिपरशिकोह के साथ हो गयी थी। अभी वचपन ही था, फिर भी दोनों प्यार में सरावोर थे। परंतु होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है।

दादा वीमार हुए, उन्हें कैद में डालकर अब्वा ने वड़े भाई दारा का सर काट लिया और उसके मँगेतर शाहजादे को ग्वालियर के किले में पोश्त पी-पीकर मरने को कैद कर दिया। इस प्रकार पूरे खान्दान को अब्बा ने दुश्मन वना लिया, परंतु जेव के लिए सिपर को दुश्मन मानना किसी हालत में मंजूर नहीं था। कभी-कभी चुपके से ग्वालियर जाकर मिलने का भी मन होता, परंतु पिता के डर से मन मसोस कर रह जाती। आज न जाने क्यों वहुत वर्षों से सोयी हुई तमन्नाएँ जाग उठीं। सोचने लगी, मुगलिया खानदान के वादशाह और शाहजादे दसों वेगमें और सैकड़ों रखैल रख सकते हैं, जवकि शाहजादियों को उम्र भर कुँवारी रहकर जवानी की उमंगों को जवरन दफना देना पड़ता है। पचास वर्ष की वुआ जहान आरा अभी तक कुँवारी रह कर आगरे के किले में अपने पिता शाहजहाँ के साथ कैद में दिन गुजार रही हैं। इससे तो वेहतर है कि खुदा भले ही गरीव घर में पैदा कर दे, जिससे ताजिंदगी इस घुटन में तो न रहना पड़े।

उसे लगा कि आकिल की जगह किशोर सिपर उसके सामने खड़ा है। कहने लगी—"सच्ची मुहब्वत वेवफा नहीं होती आकिल ! दिया जलता है तो पतिंगे भी जलते हैं। हमारी तरफ़ इस तरह न देखो। हमारा भी दिल दर्द से भरा हुआ है, उसको समझने की कोशिश करो।"

आकिल को लगा कि उसके भटकते हुए सपने डूबने से बचकर लहरों पर थिरक रहे हैं। फिर तो दो दिलों का रुका हुआ बाँध टूट गया। रोजाना वे कहीं न कहीं मिलते रहे। प्यार में शाहजादी हुजूर का नाम रह गया केवल 'जेब' और लाहौर के युवक सूबेदार का 'आकिल'।

औरंगजेब के हजारों आँखें भी थीं। पहले दर्जे का शक्की तो था ही वह, उसे शाहजादी के अचानक बदलाव से वहम हो गया। संजीदा आकिल भी चहकता-सा रहने लगा। आखिर उसने किसी प्रकार वाकया का पता लगा ही लिया।

एक हफ्ते में ही लाहौर से कूच का हुक्म हुआ। पालकियों और रथों में बेगमें और शाहजादी जा रही थीं। हिफाजत के लिए तातारी बाँदियों और खोजाओं का पहरा था। दूसरी शाम को शाहजादी ने देखा घोड़े पर चढ़ा हुआ रंज से ग़मगीन आकिल किसी तरह उसकी पालकी के पास पहुँच आया है। जल्दी से एक जड़ाऊ कंगन उसको देते हुए सिसकियों भरी आवाज में शाहजादी ने कहा कि "प्यारे, मेरी यह आखिरी निशानी अपने पास ताजिंदगी रखना। हमारी यह आखिरी मुलाकात है। अब्बा को सब पता चल गया है। तुम्हें जल्दी ही कत्ल कर दिया जायेगा, ऐसी पोशीदा खबर मिली है। अगर हो सके तो हिंद से भागकर काबुल या अफ़गानिस्तान चले जाओ। खुदा ने चाहा तो कभी न कभी फिर मिलना हो जायगा, नहीं तो फिर उस दुनिया में तो मुलाकात होगी ही जहाँ न शाहंशाह का डर है, न उनकी फौजों का।"

आकिल खाँ ने सर झुका कर कंगन को लेकर चूम लिया और केवल इतना ही कह पाया कि "बंदा मर मिटेगा, मगर आपकी इज्जत पर आँच नहीं आने देगा।" उसका गला भर आया, आवाज काँपने लगी। वह आँखें पोंछता हुआ जल्दी से आगे बढ़ गया।

दिल्ली आकर बादशाह ने अपनी प्यारी बेटी का गम दूर करने की बहुत कोशिश की। कई मुल्कों के शाहजादों की तस्वीरें मँगायी गयीं। उनमें से किसी एक को शादी के लिए चुन लेने का सुझाव दिया।

परंतु शाहजादी का एक ही जवाब रहता कि "मैं तो ताजिंदगी अब्बा हुजूर की खिदमत में रहूँगी। अभी तक तो मेरा कुरान-शरीफ का तर्जुमा भी पूरा नहीं हो पाया है। भला हमारी ऐसी क्या खता हो गयी कि अब्बा हमें आँखों से दूर करना चाहते हैं।"

हाँ, तखलिया में वह गुलरुख से कहती, "गुल, अब्बा रियासती मामलों को समझते हैं मगर किसी के दर्द की तड़पन को नहीं। वे सारे हिंद के बादशाह जरूर हैं, पर उन्हें क्या हक है कि प्यार से लगाये हुए किसी मासूम पौधे को कुचल कर फेंक दें।"

इतना कहकर, औरंगजेब के बाद हिंदुस्तान की सबसे ताकतवर शख्सियत बिलख-बिलख कर रोती हुई बेहोश होकर गुलरुख की बाँहों में गिर जाती।

एक दिन यह भी सुना गया कि आकिल खाँ की दिल्ली दरबार में तलबी हुई है,

परंतु वह भागकर कहीं चला गया है। उसे ढूँढने के लिए चारों तरफ फौजें भेजी गयी हैं।

इसके एक महीने बाद जब शाहजादी सदा की तरह ग़मगीन बैठी थी तो गुलरुख दौड़ती हुई आयी और धीरे से कहने लगी—"शाहज़ादी हुजूर, खुशखबरी है।" कान में कही हुई बात सुनकर शाहजादी के बीमार और मुरझाये चेहरे पर चमक-सी आ गयी। चहक कर कहने लगी—"कहाँ है? तुझे कैसे पता चला?"

—"कल रात में ही तो मेरे गरीबखाने पर आकर ठहरे हैं। बढ़ी हुई दाढ़ी, मैले कपड़े किसी समय के सजीले जवान, दुखों के मारे बीमार से दिखाई दे रहे हैं।"

उसी रात से एक लम्बी-तगड़ी बाँदी गुलरुख के साथ शाहजादी के हरम में आने लगी। पूछने पर उसने अपनी मामू की बेटी बतायी। औरतों के सामने भी वह पर्दा करती इसलिए कुछ कानाफूसी होने लगी—परंतु बेगमों और शाहजादियों के हरम में इस प्रकार की मामूजाद और फूफीजाद बाँदियाँ प्रायः ही आती रहती थीं, इसलिए थोड़ी-सी चर्चा होकर बात दब जाती।

परंतु शाहजादी जेबुन्निसा के महल के लिए यह नयी बात थी। वह कट्टर मजहबी थी, रोज तरन्नुम के साथ कुरानशरीफ का पाठ करती, हर जुम्मा को मस्जिद में जाती, दिन में पाँच बार नमाज पढ़ती। बादशाह हुजूर तक खबर पहुँची। उनको अंदेशा तो था ही कि बाग़ी जरूर दिल्ली आयेगा; क्योंकि इश्क में मौत का डर नहीं रहता। आखिर परिंदा जलने के लिए ही तो दीये के पास झूमता हुआ चला आता है।

इधर जब पंद्रह दिन हो गये तो एक रात में आकिल कहने लगा—"जेब, इस प्रकार कितने दिन चलेगा? हमें यहाँ से कहीं दूर निकल जाना चाहिए। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे केवल मेरी जेब चाहिए न कि उसकी दौलत और रुतबा। कहीं भी दो पैसे मजदूरी करके पेट भर लेंगे।"

मुस्कराती हुई जेब ने कहा कि "आकिल कल जरूर फैसला कर लेंगे।" और दूसरे दिन अपने आप फैसला हो गया।

●

नंगा फ़कीर सरमद

सवा तीन सौ वर्ष पहले की वात है। वड़े भाई दारा को मारकर और पिता शाहजहाँ को कैद करके औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर बैठ चुका था। हिन्दुओं के धर्मस्थानों को तोड़ता जा रहा था, जजिया कर भी लगा दिया था। वादशाह वनने के वाद उसे गाजी वनने की धुन सवार थी।

जामा मस्जिद के सामने हिंदू-मुसलमान और सिखों की भीड़ इकट्ठी थी। शहर में वहुचर्चित नंगा फ़कीर सरमद बीच में खड़ा हँस रहा था।

वादशाह जुम्मा की नमाज़ पढ़कर वाहर आया। लोग वा-अदब खड़े होकर कोर्निश करने लगे, परंतु सरमद उसी तरह खड़ा रहा।

वादशाह ने कहा—"सुना जाता है तुम मुसलमान फ़कीर होने के वावजूद कुफ्र वकते रहते हो? पाक मस्जिद के सामने वेपर्द रहते हो?"

फ़कीर के चेहरे पर पवित्र आभा फैल गयी। कहने लगा— "ऐ वादशाह, अल्लाह सव जगह मौजूद है—मस्जिद, गिरजे, मंदिर और गुरुद्वारों में। मेरी नजर में सभी धर्मस्थान पाक हैं। कुफ्र तुम्हारे मौलवी वकते हैं, जो खुदा को किसी एक किताव में या मस्जिद में वंद करके रखते हैं। तुम जो मुझे नंगा कहते हो, यह तुम्हारी वे-अक्ल की वात है। जब खुदा ने मुझे और तुम्हें इस जमीन पर भेजा था तव हम बिना लिबास के थे, फिर अब उसके दरवार में क्यों झूठी चिलमन डाली जाय।"

औरंगजेब ने देखा सरमद सीना तानकर बेझिझक उसके सामने खड़ा है, डर-भय का नाम भी नहीं। परंतु वह वहुत चालाक था, अवाम के जज्वातों को पहचानता था। इतने वड़े हुजूम में अपनी तौहीन को हँसकर गवारा कर लिया और यह कहा कि तुम्हारी निडरता और हाजिरजवावी पर हम बहुत खुश हैं। कभी तुम्हें दरवार में वुलाकर बात करेंगे। हिंदू और सिख तो इस वाकये से वहुत खुश हुए, परंतु कट्टर मुसलमान काजी और मुल्ला बौखला उठे। लेकिन उस समय लोगों का रुख देखकर चुप रहे।

कुछ दिनों वाद वे वादशाह के पास गये। कहने लगे—"हुजूर, सरमद हमेशा कुफ्र वकता रहता है, पाक-कुरान को वेइज्जत करता है, वह दोजखी कीड़ा है, उसे जल्दी

दुनिया से उठा दिया जाय, नहीं तो दीन-इस्लाम के वंदों में भी कुफ्र फैलने का डर है।"

औरंगजेव तो यही चाहता था कि लोगों में सरमद के लिए घृणा फैले, जिससे उसे सजाये मौत दी जा सके। उसे गिरफ्तार करने के लिए सिपाही भेज दिये गये, परंतु इस बीच में वह दिल्ली से बाहर चला गया था। जहाँ भी जाता, हजारों लोग इकट्ठे हो जाते। वह कहता—"खुदा एक है, दुनिया के सब बच्चे उसे एक-से प्यारे हैं—चाहे वे किसी भी मजहव के हों। ये बँटवारे नकली हैं, खुदा के वंदों पर जजिया लगाना उसकी वेइज्जती है।"

ये बातें दिल्ली में वढ़-चढ़कर पहुँचीं। कहीं लोगों में वलवा न फैल जाय इसलिए एक फौजी टुकड़ी ने उस नंगे फकीर को पकड़कर रात में दिल्ली लाकर लाल किले में वंद कर दिया।

यद्यपि वात को पोशीदा रखा गया था, परंतु बेगमों और वादशाह की प्यारी बेटी जैबुन्निसा को फकीर की गिरफ्तारी का पता चल गया। वे उसके चमत्कारों के वारे में वहुत-कुछ सुन चुकी थीं। शाहजादी वादशाह के पास जाकर कहने लगी—"अव्वा हजूर, लोग कहते हैं सरमद पहुँचा हुआ फकीर है, उसे कैद करके आपने अच्छा नहीं किया। हमलोगों की दरख्वास्त है कि उसे वापस उसके मुल्क ईरान भेज दिया जाय। अगर आपका हुक्म हो तो मैं एक वार उसे समझाना चाहती हूँ, इस पर भी वह न माने तो फिर जो आप तजवीज करें, वह सजा दें।"

औरंगजेब को यह वात जँच गयी। उसने सरमद का फैसला मुलतवी कर दिया, सोचा—कुछ दिनों में मुल्लाओं का जोश भी ठंढा हो जायगा।

शाहजादी किले के तहखाने में सरमद की कोठरी में गयी। कहने लगी—"वावा, आप पाक-साफ औलिया मुसलमान हैं, लोग आपकी इज्जत करते हैं, आपकी वात मानते हैं। आपको पाक इस्लाम के प्रचार में लगना चाहिए, मैं आपकी हर तरह से मदद करूँगी। कट्टर मुल्लाओं से हिफाजत के लिए आपके पास हमेशा दस-बीस सिपाही और खिदमतगार रख दूँगी। अव तक आपके साथ जो सलूक हुआ उसके लिए हम शर्मिंदा हैं।"

सरमद हँसकर कहने लगा—"शाहजादी, जो सर्वशक्तिमान अल्लाह की हिफाजत में है, उसे भला तुम्हारी फौज और खिदमतगारों की क्या जरूरत है। मैं न मुसंलमान हूँ न हिन्दू—वल्कि एक इंसान हूँ। शायद तुम्हें मेरी वद्दुआ का डर लगता है। परंतु यकीन रखो, सरमद के मन में किसी के लिए वदगुमान नहीं है, वह सवका भला चाहता है। तुम इस समय मुगलिया सल्तनत की ताकतवर हस्ती हो, वादशाह तुम्हारी वात मानता है। तुम्हारा फ़र्ज है कि वेंकस इंसानों की तकलीफें दूर करो। अपने अव्वा से कहकर मंदिरों और गुरुद्वारों का तोड़ना रोको और जजिया कर तुरंत

बंद करो। तुम लोगों ने खुदा को तकसीम करके छोटा बना दिया है। तुम्हारे अब्बा अगर अब भी नहीं सम्हलेंगे तो उनको जिंदगी में कभी अमन-चैन नहीं मिलेगा। इतनी बड़ी सल्तनत कुछ वर्षों में ही नेस्त-नाबूद हो जायगी।"

शाहजादी बाप से भी ज्यादा कट्टर मुसलमान थी। उसे फकीर की गुस्ताख़ी भरी बातों से गुस्सा आ गया। बादशाह के पास जाकर कहने लगी—"अब्बा हुजूर, ऐसा लगता है कि यह फकीर पागल नहीं है बल्कि अब्वल दर्जे का गुस्ताख है और कुफ्र बकता है। मेरी आरज़ू है कि इसको जितनी जल्दी हो सके कत्ल करा दिया जाय।" दूसरे दिन बादशाह ने फकीर को दीवान-ए-आम में बुलाया। हुक्म दिया कि "ऐ फकीर! जरा कलमा पढ़कर तो सुनाओ।" सरमद ने कहा—"ला इल्लाह।" "यह तो अधूरा है, आगे के अल्फाज भी तो बोलो।" "औरंगजेब, सरमद जिस बात पर यकीन नहीं करता उसे कैसे कहेगा ? मैं यह नहीं मानता कि मोहम्मद रसूल अल्लाह है (केवल मोहम्मद ही खुदा का पैगम्बर हैं) मेरी समझ में तो बुद्ध, ईसा और नानक भी मोहम्मद की तरह खुदा के पैगम्बर थे।" कुफ्र की हद हो गयी। सरे आम पैगम्बर का दूसरे काफिरों से बराबरी कर रहा है।

बादशाह गुस्से से काँपने लगा। हुक्म दिया कि इस काफिर का सर धड़ से जुदा कर दो, लाश कुत्तों के लिए दिल्ली की गलियों में फेंक दी जाय। सरे आम पैगम्बर दूसरे काफ़िरों से बराबरी कर रहा है।

सरमद को बध-स्थल पर लें जाया गया। दिल्ली के हजारों लोग रो रहे थे, छाती पीट रहे थे। सरमद ने मुस्कराते हुए कहा—"दोस्तो, मंसूर का किस्सा पुराना हो गया था। मैं सूली पर चढ़ कर उसे फिर ताजा कर दूँगा।"

जब जल्लाद तलवार लेकर आया तो प्यार भरी नजर उस पर डालकर कहने लगा—"मेरे प्यारे, तुम आ गये ? तुम किसी भी शक्ल में आओ, मैं तुम्हें पहचान लूँगा। क्योंकि मैं तेरे जर्रे-जर्रे से वाकिफ हूँ।"

जल्लाद एक बार तो झिझका, परंतु फिर तलवार का वार हुआ। सरमद का सर धड़ से जुदा होकर एक तरफ लुढ़क गया।

सवा तीन सौ वर्ष हो गये, इस बीच बहुत से राजा, बादशाह, अमीर, उमराह आये और चले गये। आज उनको कोई पहचानता भी नहीं, परंतु जामा मस्जिद के नीचे कोने में सरमद की साधारण-सी कब्र है, उस पर रोजाना सैकड़ों स्त्री-पुरुष प्यार और इज्जत से फूल-बताशे चढ़ाते हैं। झुक कर आदाब बजाते हैं, बाल-बच्चों के लिए दुआएँ माँगते हैं।

●

माँ की ममता

•

सन् १७०७ में बाप की तरह भाइयों की हत्या करके औरंगजेब का वड़ा लड़का मौज्जम ६६ वर्ष की उम्र में दिल्ली के तख्त पर वैठा।

५ वर्ष वाद उसके मरने पर उसी तरह दूसरे भाइयों को मारकर अथवा कैद करके मुईजुद्दीन जहाँदारशाह के नाम से वादशाह हुआ। वह अव्वल दर्जे का ऐय्याश और निकम्मा था। सारे दिन अफीम और शराब के नशे में रहता।

यद्यपि पिछले पाँच वर्षों में मुगलिया सल्तनत सिकुड़ती जा रही थी, सूवेदार मन-मानी करने लगे थे, फिर भी दिल्ली के लाल किले में मयूर सिंहासन और अरवों रुपये की धन-संपत्ति तो थी ही।

सल्तनत की सारी हुकूमत मलक-ए-आजम लालपरी बेगम करती थी। किसी समय वह आगरा में साधारण नर्तकी थी। किशोरावस्था में ही एक बच्चे की माँ वन गयी। एक महीने के बच्चे को सीकरी की जामा मस्जिद के वड़े इमाम को सौंप कर खुद एक रिश्तेदार के यहाँ दिल्ली चली आयी।

संयोग से वह वड़े शाहजादे की नजर पर चढ़ गयी और जब वह जहाँदारशाह के नाम से तख़्त पर बैठा तव उसे शादी करके हरम में रख लिया। समय पाकर अपनी खूब-सूरती, होशियारी और दयानतदारी से वड़ी बेगम बन गयी। मुगलिया सल्तनत उसके हाथों में आ गयी, उसे दूसरी नूरजहाँ कहा जाने लगा।

उस सस्ती के ज़माने में उसे दो करोड़ रुपये सालाना हाथखर्च के लिए मिलते थे, जिनमें से ज्यादातर वह ज़रूरतमंद और गरीवों में बाँट देती थी।

मलका के अलावा दूसरा शक्तिशाली व्यक्ति था—हिजड़ा नासिर हुसेन। विना उसकी मर्जी के वादशाह या मलका से किसी की मुलाकात होनी संभव नहीं थी। यद्यपि सल्तनत के दूसरे अमीर-उमरा उससे नाराज़ थे, तथा उसके व्यवहार से दुखी थे। परन्तु ऊपरी तौर पर उसकी खुशामद करते रहते थे।

हिजड़ा होने के कारण वह महलों में बेरोक-टोक जाता रहता था। बेगमों और शाहजादी, शाहजादों के चारित्रिक दोषों की उसे पूरी जानकारी रहती, इसलिए सव उससे डरते रहते। केवल वड़ी बेगम ही ऐसी थी, जिसके दामन पर किसी प्रकार का दाग नहीं था।

एक शाम को आगरे से फतेहपुर सीकरी की वड़ी मस्जिद का इमाम एक १० वर्ष के बच्चे को लेकर लाल किले के फाटक पर आया। पहरेदार से ख्वाजासरा से मिलने का संदेश भिजवाया। वे नासिर के सामने हाजिर हुए। बुजुर्ग मौलवी का चेहरा दयानतदार और रोवीला था। साथ का वच्चा भी वहुत खूवसूरत था। थोड़ी देर तक नासिर उनको देखता रहा फिर रोव से कहने लगा कि "आपको पहले मेरे मातहत लोगों से मिलना चाहिए था; फिर अगर वे जरूरी समझते तो मेरे पास ले आते।"

"जनाव, हमारा काम ही कुछ ऐसा था कि आपका कीमती वक्त लेना पड़ा। हमें वड़ी मलका से मिलना है—आप इसका इन्तजाम कर दें।"

मौलवी की विना खुशामद की वातें सुनकर खोजा नाराज़ हो गया और कहने लगा—"आपके काम की जानकारी होने के वाद ही मैं तय करूँगा कि आपको मलका से मिलने दिया जाय या नहीं ?"

"माफ करिए, हमारा राज़ पोशीदा है; हम मलका के सिवाय किसी को नहीं वतायेंगे।"

नासिर गुस्सा होकर कहने लगा—"आप बुजुर्ग हैं, बड़ी मस्जिद के इमाम हैं, नहीं तो ऐसी गुस्ताखी भरी बातों को सुनने का मैं आदी नहीं हूँ। खैर, ऐसा लगता है कि यह राज़ उम्र भर आपके पास ही रहेगा। आप दोनों लाल किले के तहखाने में कैद रहेंगे।"

थोड़ी देर तक मौलवी कुछ सोच-विचार करता रहा, फिर एक निश्चय पर पहुँचकर कहने लगा—"भाई, आप खामख्वाह नाराज़ हो गये हैं। खैर, इस मासूम वच्चे के खातिर वह राज़ मैं आपको वता रहा हूँ। खुदा की कसम है, किसी दूसरे को इसका पता न चले।"

सारी वातें सुनकर खोजा के चेहरे पर एक दुष्टताभरी मुस्कान फैल गयी। बहुत कीमती राज़ उसे मिल गया था। उन्हें वहीं ठहरने को कहकर वह भीतर महल में चला आया। थोड़ी देर वाद वापस आया तो मलका उसके साथ में थीं। मौलवी ने १० वर्ष पहले उसे बुरी हालत में देखा था। आज तो वह हीरे-पन्नों से लदी थी। चेहरे पर हुकूमत का रोव था।

मौलवी को सलाम करके वच्चे की तरफ टकटकी लगाकर देखने लगी। १० वर्ष पहले की सारी घटना याद आ गयी। वह वच्चे को गोदी में बैठाकर सुबक-सुबक कर रोने लगी। आज वह मुगलिया सल्तनत की मलक-ए-आजम नही थी, वल्कि केवल एक ममताभरी माँ थी। पिछले आठ वर्षों से वह शाही हरम में थी, परंतु उसके कोई वच्चा नहीं हुआ था।

"वावा, आपलोग वगल के कमरे में आराम करें, मैं आपको थोड़ी देर में वुला लूँगी।"

खोजा से सलाह-मश्विरा होने लगा कि किस प्रकार बादशाह सलामत के हुजूर में बच्चे को पेश किया जाय।

"मलका-ए-आज़म, वैसे मैं आपका गुलाम हूँ, आपका हुक्म बजाना मेरा फर्ज है। परन्तु जहाँ तक इस राज़ का सवाल है, मुझे सारी बातें माँ-बदौलत से ब्यौरेवार कहनी होंगी; नहीं तो पता लगने पर मेरी जान पर आफ़त आ सकती है। वैसे हर चीज की कीमत होती है, मैं पिछले दो वर्षों से सल्तनत की वज़ीरी के लिए आपकी इल्तज़ा कर रहा हूँ, पर आप न जाने क्यों मुझसे नाराज़ हैं।"

बेग़म खोजे की मक्कारी की बातें समझ गयी, परन्तु वह अपने निजी स्वार्थ के लिए सल्तनत को ऐसे आदमी के हाथ में सौंपने को तैयार नहीं थी।

"यह किसी हालत में मुझे मंजूर नहीं है। अगर जरूरत हुई तो मैं अपने बच्चे के साथ फतेहपुर सीकरी की मस्जिद में रहकर दिन काटने को तैयार हूँ। मुझे मलका-ए-आजम नहीं रहना है।"

"बेगम साहिबा, अभी तो केवल हम चार आदमी ही जानते हैं, परंतु कल सुबह तक यह बात सारी दिल्ली में फैल जायगी। जो लोग आपको आज तक पाक-साफ़ समझते आ रहे हैं, वे थू-थू करेंगे। शायद बादशाह आपको और बच्चे को जिंदा नहीं रहने देंगे। जिस फकीर बाबा ने बच्चे की हिफाज़त की है, वह भी तहखाने में सड़ेगा।"

हिंदुस्तान की मलका रोती जा रही थी। किसी प्रकार भी उसे आगे का रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था।

नासिर कहने लगा—"मलका-ए-आजम यह समय जजबातों का नहीं है, आप सारी बातें मुझ पर छोड़ दीजिए। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि मौलवी और बच्चे का क्या हुआ ?"

बेग़म रोती हुई भीतर चली गयी।

नासिर उस कमरे में आया जहाँ मौलवी और बच्चा आराम से बैठे हुए भविष्य का सुख-स्वप्न देख रहे थे।

मौलवी कह रहा था—"बेटा, अल्लाह ताला की रहम से तुम अब बहुत अमीर हो गये हो। आगे से तुम यहीं रहोगे। परंतु अपने बूढ़े बाबा को मत भूल जाना। कभी-कभी सीकरी आते रहना।"

नासिर आकर उन्हें अपने साथ लम्बे गलियों में होते हुए किले के सुरंग में ले गया। वहाँ एक अँधेरा तहखाना था जहाँ गूँगे-बहरे हब्शी पहरा दे रहे थे। ख्वाजासरा के इशारा करने पर चार हब्शियों ने उन्हें पकड़ लिया।

"मौलवी साहब, आखिरी वक्त में खुदा को याद कर लीजिए। मैंने मलका को बहुत समझाया परन्तु उनको मंशा है आप दोनों को खत्म कर दिया जाय।"

"भाई, मैं तो खैर ८० वर्ष का बूढ़ा हूँ। आज नहीं तो कल खुदा के घर जाना है, परन्तु इस मासूम बच्चे का क्या कसूर है ? एक बार हमें मलका से फिर मिला दें।"

खोजा ने गुलामों को इशारा किया। इस बीच तहखाने के कुएँ के पटरे खुल चुके थे, उन दोनों को घसीट कर उधर ले जाया जा रहा था। बच्चा जोर-जोर से रोने लगा।

अचानक तहखाने का दरवाजा खुला और दौड़ती हुई मलका बदहवाशी की हालत में भीतर आयी। हब्शियों को रुकने का इशारा किया।

"बेगम, आप अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रही हैं। यह समय निजी जजबातों का नहीं है। आज आप मुगलिया सल्तनत की आला हस्ती हैं। जैसे ही इस बात का पता बादशाह सलामत को चलेगा, आपकी इज्जत खाक़ में मिल जायेगी। आप एक धोखेबाज़ बाजारू औरत साबित होंगी।"

"मक्कार हिजड़े, तुम्हारी बहुत ज्यादती मैंने आज तक सही, इस दुःख के समय भी तुमने अपनी वज़ीरी की कीमत वसूल करनी चाही। फिर भी तुम्हारा क्या भरोसा कि कब इस बात को नहीं फैला दोगे ? मौलवी बाबा और बच्चे का मुझे यकीन है, परंतु तुम्हारा नहीं।"

बेगम ने हब्शियों को उन दोनों को छोड़ देने का और हिजड़े को कुएँ में ढकेलने का इशारा किया।

खोजा बहुत रोया-चिल्लाया, आरजू-मिन्नत करने लगा परन्तु उस जमींदोज तहखाने में कौन उसकी आवाज सुनता। हब्शियों ने उसे पकड़ कर कुएँ में ढकेल दिया। एक जोर की आवाज हुई और अपने समय का बहुत ताकतवर किन्तु बदनाम बदख्वार शख्स एक मिनट में जहन्नुम में चला गया।

"बाबा, आज तक आपने मेरी लाज रखी है, आगे भी मुझे आप दोनों पर भरोसा है। आप बच्चे को लेकर वापस सीकरी चले जायँ। यह ख्याल रहे कि जाहिरा तौर पर न मैं इसकी माँ हूँ और न यह मेरा बेटा। कभी-कभी बादशाह सलामत के साथ हमलोग जियारत के लिए वहाँ आते रहेंगे, उस समय मैं अपने इस लख्ते जिगर को चुपके से प्यार कर लूँगी। इसकी परवरिश और पढ़ाई के लिए हर महीने दस हजार रुपये आपके पास पहुँचते रहेंगे।"

●

सती मस्तानी

•

बुंदेलखंड पर मुगलों की आँखें लगी थीं। कई बार चढ़ाई की, परंतु वहादुर बुंदेलों ने उन्हें पीछें ढकेल दिया। अंत में मुहम्मद खाँ वंगश के सेनापतित्व में फौजें भेजी गयीं। वह वड़ा दुर्घर्ष और कट्टर मुसलमान था। प्रत्येक वार जव महाराज छत्रसाल के राज्य पर चढ़ आता तो मंदिरों को तोड़कर मस्जिद वनवाता और हिंदुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार करता। महाराज उसके आक्रमण को विफल कर देते और फिर से मस्जिदों को तुड़वा कर मंदिर वनवा देते। पराजय और अपमान की ज्वाला से वह जल-भुन उठा। वादशाह भी अधीर हो उठा।

जवर्दस्त हमले के लिए पूरी योजना वनी। सन् १७२९ में वहुत वड़ी फ़ौज़ लेकर मुहम्मद खाँ छत्रसाल की राजधानी पन्ना तक वढ़ आया।

विशाल मुगल-साम्राज्य की वड़ी सेना के मुकाबले में शुरू से ही अस्त्र-शस्त्र और साधन बुंदेलों के पास कम थे। संख्या की दृष्टि से भी वे वहुत थोड़े थे। उनका संवल था शौर्य, साहस और देशप्रेम। वार-वार के आक्रमण ने छत्रसाल की सेना को जर्जरित कर दिया। महाराज की अवस्था ७० वर्ष की थी। पहले का सा वल भी शरीर में नहीं रहा। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि इस बार के आक्रमण में बहुत से हिन्दू राजाओं और जागीरदारों ने मुसलमानों का साथ दिया।

महाराज ने देखा कि अंतिम दिनों में शायद तुर्कों का दास होकर रहना पड़ेगा। बुंदेलखंड पर उनके ही जीवनकाल में गैरिक ध्वज के स्थान पर मुसलमानी हरा निशान फहराने की आशंका से वे बेचैन हो उठे। पूना के श्रीमन्त पेशवा वाजीराव की वीरता और साहस की गाथाएँ उन्होंने सुन रखी थीं। छत्रसाल ने उन्हें एक दोहा लिखकर भेजा—

जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आज।
वाजी जात बुंदेल की, राखो वाजी लाज॥

पत्र मिलते ही पेशवा ने निर्णय ले लिया। लम्बी यात्रा थी, फिर भी दक्षिण से अपनी अजेय मराठा-सेना लेकर वीस दिन में ही पन्ना पहुँच गये। मराठे और बुदेलों ने मिलकर घेरा डाले हुए मुगलों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया।

उन्होंने शत्रुओं पंर निर्णायक विजय पायी। अपार युद्ध-सामग्री छोड़ वे भाग खड़े

हुए। मोहम्मद खाँ वंगश दूर के एक किले में जा छिपा और रात के अँधेरे में बुर्का ओढ़कर भाग निकला।

एक रात वाजीराव को नींद नहीं आ रही थी। करवटें वदलते आधी रात हो गयी। उनका ध्यान वरवस अपनी माता, पत्नी और पूना की ओर चला जाता। परेशान होकर छज्जे पर चले आये। ठंडी हवा में कुछ शांति मिली। सहसा एक मधुर रागिनी सुनाई पड़ी। स्वरों के उतार-चढ़ाव और तान ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया। खिंचे हुए उसी ओर विना अंगरक्षक के ही वढ़ते गये।

राजप्रासाद की निर्जन वीथियों को पार कर वे एक जगह पहुँचे। देखा, तन्मय होकर एक किशोरी संगीत-साधना कर रही थी। जितना सुरीला कंठ उतना ही सुन्दर रूप। गीत की समाप्ति पर उसने वीणा एक ओर रख दी। एकाएक उसकी दृष्टि वाजीराव पर पड़ी। केवल इतना ही कह सकी—"श्रीमंत, आप!"

दोनों की आँखें एक-दूसरे में खो गयीं। वाजीराव शौर्य के साथ वुद्धि, सुन्दरता और गुणग्राहकता के लिए विख्यात थे। कुछ क्षणों के लिए दोनों ही निर्वाक् रह गये। उन्होंने धीरे से आगे वढ़कर अपना वहुमूल्य कंठहार किशोरी के गले में डाल दिया। लाजभरी झुकी पलकों को लिये सपने की तरह वह ओझल हो गयी।

महाराज छत्रसाल ने विजयोत्सव दरवार किया। श्रीमंत वाजीराव पेशवा को तृतीय युवराज के पद दिये जाने की घोषणा की एवं राज्य के तृतीयांश का अधिकारी वनाया। सोने के थालों में हीरे-मोती और जवाहरात की भेंट देते हुए उनका अभिषेक संपन्न हुआ। ज्येष्ठ युवराज से पाग, पेंच और तलवार वदली गयी।

विदा के कुछ दिनों पहले अपने निजी कक्ष में पेशवा के साथ वैठे वार्त्तालाप करते हुए महाराज ने कहा—"तुमने समय पर पहुँच कर इस वुढ़ापे में मेरी और हिंदू-धर्म की लाज रख ली। एक वात और रखनी होगी।"

इतना कहकर उन्होंने प्रहरी को संकेत किया। कुछ ही क्षणों में एक रूपवती किशोरी ने कक्ष में प्रवेश किया। पेशवा चकित रह गये। उसी रात सपने-सी ओझल हो जाने वाली वही रूपसी।

छत्रसाल ने भरी हुई आवाज में कहा—"मैंने इसे पिता का सा प्यार दिया है। कहने को यह मुसलमान है, किंतु आचार-विचार और संस्कार में किसी भी हिंदू से कम नहीं। तुम इसे पत्नी के रूप में अंगीकार करो।"

चित्तपावन व्राह्मण-कुल में जन्म लेने के कारण पेशवा आचारवान और धर्मनिष्ठ थे। माता राधावाई भी कट्टर धार्मिक थीं। उलझन में पड़े थे कि उनकी दृष्टि किशोरी पर पड़ गयी। छलछलाती आँखें और काँपते ओठ न जाने क्या कह गये।

महाराज ने वाजीराव का हाथ पकड़ लिया, कहने लगे—"तुम-सा कोई पात्र इस

रत्न के लिए मिलेगा नहीं। अब मैं अधिक दिनों तक नहीं बचूँगा, यदि इसे कोई कष्ट हुआ तो मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी।"

पशोपेश में पड़े पेशवा को छत्रसाल के अंतिम शब्दों ने मानो जगा दिया। उन्होंने स्वीकृति दे दी।

महाराज ने राजसी धूमधाम एवं हिंदू-रीति से मस्तानी का कन्यादान किया और उसे भारी दहेज के साथ विदा किया। मराठा फौज में बाजीराव पेशवा का बड़ा अनुशासन और आदर था। किंतु उन दिनों इस प्रकार के संबंध उच्च कुल के ब्राह्मणों के लिए वर्जित थे। मराठा सरदारों में कानाफूसी होने लगी। पेशवा के पहुँचने के पहले ही पूना में बातें बढ़-चढ़कर फैलीं।

राजधानी में प्रवेश के समय पेशवा के आगमन पर न तो तोरण सजे और न अगवानी के लिए कोई आया। महल में डोली के प्रवेश का आदेश भी नहीं मिला। श्रीमंत समझ गये कि माता अत्यंत रुष्ट हैं। भविष्य का आभास उन्हें हो गया। वे चरण-स्पर्श के लिए गये परंतु माता ने अपने पैर एक ओर हटाते हुए तीखे स्वर में कहा—"मराठों का श्रीमंत पेशवा हिंदूपद-पादशाही का जहाँ गौरव बढ़ाकर आया है, वहीं एक मुस्लिम नर्तकी को वधू बनाकर उसने कुल को कलंकित किया है। इससे तो अच्छा था बाजी, तू मेरी कोख में आता ही नहीं। मुझे यह पाप तो वहन नहीं करना पड़ता।"

बाजीराव चुपचाप भूमि पर मस्तक टेक वापस आ गये।

पत्नी काशीबाई पतिपरायणा थीं। उस समय तक एकाधिक पत्नी अथवा रक्षिता की प्रथा मराठों में चल पड़ी थी, किंतु विधर्मी स्त्री से संबंध हेय माना जाता था। फिर भी उसने छोटी बहिन की तरह मस्तानी को अपने महल में रखा।

इधर माता की प्रेरणा से पंडितों की सभा बैठी। उन्होंने निर्णय दिया कि तुर्कनी को पेशवा के महल में प्रवेश का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। विवश होकर बाजीराव ने शहर के बाहर शनिवार बाड़ा नाम का एक छोटा-सा महल बनवा दिया। मस्तानी वहाँ शुद्ध हिंदू आचार-विचार से रहने लगी। अध्ययन एवं भजन-पूजन में समय बिताती। बाजीराव के दुखी होने पर केवल एक ही उत्तर देती—"प्रेम सुख का मुखापेक्षी नहीं, वह स्वयं में आनन्द की अनुभूति है। आप सुखी रहें, इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है।"

यद्यपि बाजीराव ने मराठों की शक्ति और कीर्ति बहुत बढ़ा दी, किंतु उनका व्यक्तिगत जीवन उदासी से भरा था। वे पारिवारिक और धार्मिक अनुष्ठानों में सम्मिलित नहीं हो पाते। यहाँ तक कि भाई-भतीजे के विवाह और उपनयन-संस्कार में भी उनका प्रवेश वर्जित था। राजकाज, युद्ध और सरदारों के पारस्परिक विग्रह से ऊबकर मस्तानी के पास जब कभी जाते तो उन्हें सांत्वना मिलती। बच्चों की तरह कहते

"सभी चाहते हैं, मैं श्रीमंत पेशवा रहूँ, पर कोई कभी यह नहीं सोचता कि मुझे वाजीराव रहने का भी अधिकार है।"

हँसकर मस्तानी कहती—"क्यों, मैं तो हूँ?"

कठिन से कठिन परिस्थिति में मस्तानी उनके साथ रहती। कई युद्धस्थलों में वह पेशवा के साथ गयी। वाजीराव को उसके स्नेहिल व्यवहार से बड़ी शांति मिलती। अगले दस वर्षों में उन्होंने बहुत से विजय-अभियान किये। नये-नये राज्यों पर मराठों के गैरिक ध्वज फहराने लगे। कभी-कभी परिहास में वे मस्तानी से कहते—"वाजीराव ने बड़ी-बड़ी वाजियाँ जीतीं, पर अपनी वाजी हार गया।"

वर्षों के कठिन परिश्रम और पारिवारिक क्लेश ने पेशवा के स्वास्थ्य पर असर दिखाना शुरू कर दिया। नर्मदा के तट पर दरवा नामक गाँव में भग्नहृदय वाजीराव वीमार थे। मराठा गौरव की दीपशिखा धीरे-धीरे मलिन होती जा रही थी। काशीबाई, राजवैद्य, सामंत और सचिव पास बैठे थे। श्रीमंत कुछ कहना चाहते थे। अवरुद्ध कंठ से अस्फुट स्वर निकले—"मस्तानी···।"

मस्तानी को खबर मिल चुकी थी, किंतु प्रियतम के अंतिम दर्शन के लिए उसके अनुनय-विनय को ठुकरा दिया गया। वह पूना के पास के किसी किले में राधाबाई की कैद में थी। उसने सती होने की अनुमति माँगी, वह भी नहीं मिली। चालीस वर्ष की अल्पायु में पेशवा का देहांत हो गया। पुराने बैर-भाव भूलकर पूना की सारी जनता के साथ कुटुंबी, सरदार, सचिव और सामंत शवयात्रा में सम्मिलित हुए। सभी रो रहे थे। अनोखी सूझ-बूझ का योग्यतम नेता और योद्धा अब न रहा।

सुसज्जित चंदन की चिता पर शव लिटाया गया। मंत्रोच्चार के साथ अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी गयी। अपार जनसमूह देख रहा था कितनी निर्ममता से सुंदर देह को भस्म करने के लिए आग बढ़ती जा रही है।

उस भीड़ के वीच से मुख पर अवगुंठन डाले, शृंगार और आभूषणों से सजी एक युवती चिता की ओर सम्हलते कदम से बढ़ती गयी। स्वर्णथाल में कपूर, अबीर, कुंकुम और पुष्प थे। यह सोचकर कि शायद श्रीमंत को अंतिम श्रद्धांजलि देना चाहती है लोगों ने हटकर मार्ग दे दिया। पास पहुँचते ही वह चिता में कूद गयी। ब्राह्मण, सरदार, सामन्त 'रोको'-'रोको' कहते ही रह गये। तेज हवा में आग की लपटों ने खुद ही घेरा डाल दिया।

लोगों ने देखा, मस्तानी के चेहरे पर एक अपूर्व तेज था और वाजीराव का सर उसकी गोद में था।

•

सती माता

•

त्रेता युग की बात है—

सीताहरण हो चुका था। भगवान राम वन-वन में ढूँढ़ते फिर रहे थे। वृक्षों से, लताओं से और पक्षियों से सीताजी के बारे में विह्वल होकर पूछ रहे थे। संयोग से शिवजी और सती उधर से जा रहे थे। सती ने कहा—"प्रभो, आप तो बताते थे कि राम ईश्वर के अवतार हैं, फिर भला ये पत्नी के वियोग में इस तरह विकल क्यों हैं ?" शिवजी की मनाही के बावजूद श्रीराम की परीक्षा लेने के लिए सीता का रूप धर के सती एक वृक्ष के नीचे बैठ गयीं। राम ने उन्हें देखा, पूछा—"सती माता आप अकेली कैसे बैठी हैं ! भगवान शिव कहाँ हैं ?" सती तो सकते में आ गयी। शिवजी के पास जाकर उन्होंने सारी बातें बतायी।

शिवजी ने कहा—"सती, तुमसे बड़ा अपराध हो गया है। सीता मेरी माता के समान हैं, तुमने उसका रूप धर लिया। अब मैं तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकूँगा।"

बहुत पश्चात्ताप और विनय करने पर उन्होंने बताया कि "तुम्हें यह शरीर त्याग कर नया जन्म लेना पड़ेगा। उस समय तुम्हारा नाम पार्वती होगा। फिर से मैं तुम्हें पत्नी के रूप में ग्रहण करूँगा।"

वे कैलाश पर रहने लगे थे। बहुत दिनों बाद एक दिन सूचना मिली कि सती का पिता दक्ष प्रजापति कनखल में बड़ा यज्ञ कर रहा है। सब देवताओं को निमंत्रण दिया गया, परंतु शिवजी और सती को नहीं। बहुत दिनों से सती पिता के घर नहीं गयी थीं। उसका मन माता-पिता से मिलने का हो रहा था। यज्ञ के अवसर पर स्वजन-मित्र तथा सगे-संबंधी भी आयेंगे; उसने पति से कनखल जाने की आज्ञा माँगी।

शिवजी ने कहा—"सती, बिना बुलाये जाने में हमेशा अपमान सहना पड़ता है। संबंध बराबरी का निभता है, हम वल्कलधारी गृहस्थ हैं, जबकि वे राजा हैं।"

सती ने इस बार फिर जिद्द की और शिवजी को मंजूरी देनी पड़ी। उन्हें अशुभ का आभास तो था ही, साथ में अपने गणों को भेज दिया। जब सती पितृगृह पहुँची तो दक्ष ने न तो कुशल-क्षेम पूछा और न आवभगत ही की।

यज्ञ की तैयारी बड़े रूप में थी, देश-देशांतर के लोग आये हुए थे। दूसरे सब देवताओं का यज्ञ-भाग निकाला गया परंतु देवाधिदेव शिव का नाम बाद दे दिया गया।

जब यज्ञ के पुरोहित ने याद दिलायी तो दक्ष ने उनके लिए बहुत-सी अपमानजनक बातें कहीं। सती वहीं पर मौजूद थीं। पति के अपमान से क्षुब्ध होकर वे प्रज्ज्वलित अग्नि में कूद पड़ीं। शिव के गणों ने यज्ञ का विध्वंस करके दक्ष का वध कर दिया।

कैलाश से आकर शिवजी ने यज्ञ-कुण्ड से सती के आधे जले मृत देह को निकाला। विक्षिप्त अवस्था में कंधे पर लेकर देश-देशांतर घूमने लगे। सृष्टि के जन्म-मरण के नियमों में व्यवधान आ गया। विष्णु की माया से सती के देह के अंग विभिन्न स्थानों पर गिरते गये। अंत में शिवजी का मोह भंग हुआ और वे फिर कैलाश पर जाकर तपस्या करने लगे।

कलियुग में ऐतिहासिक तौर पर पहली सती राणक देवी ११वीं शताब्दि में जूनागढ़ में हुई थी।

उस समय गुर्जर-नरेश सिद्धराज जयसिंह का राज्य था। जूनागढ़ का राजा खेंगार उसके साम्राज्य में एक सामंत था। वह अपने समय का अद्‌भुत वीर था। उसकी रानी थी राणक देवी, जो अपने सौंदर्य और शील के लिए देश भर में प्रसिद्ध थी। दूर-दूर के लोग उसका दर्शन करने आते थे।

जयसिंह से यह सहन न हुआ। मंत्रियों, सभासदों और सेनाध्यक्षों के विरोध करने पर भी उन्होंने एक बड़ी सेना लेकर जूनागढ़ के किले को घेर लिया। बहुत दिनों तक घेरा डालने के बाद भी जब सफलता न मिली और उनके सैनिक थकने लगे, तब वहाँ के दुर्गरक्षक को मिलाकर किले पर विजय प्राप्त कर ली। राजा खेंगार दूसरे साथियों के साथ वीरता से जूझता हुआ मारा गया। इधर जब जयसिंह राणक देवी से मिलने के लिए आतुर होकर किले में पहुँचे तो वहाँ महल के एक कोने में उन्हें सती के जले हुए शरीर की राख-मात्र ही मिली। पैरों में महावर लगा कर और सोलहों श्रृंगार करके सती अपने पति के सिर को गोद में लेकर भस्म हो गयी थी। आज तक हजारों-लाखों सधवाएँ और कुमारी कन्याएँ उसके पदचिह्न को पूजती हैं। मैंने जूनागढ़ में राणक देवी का महल देखा और वह स्थान भी देखा जहाँ वह सती हुई थी। आज भी गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान में उसके नाम के गीत गाये जाते हैं।

सती ने अंतिम समय में जयसिंह को शाप दिया था कि उसका वंश नहीं चलेगा, उसे कोई पानी देने वाला नहीं रहेगा। इतिहास साक्षी है कि परम प्रतापी जयसिंहदेव का न तो वंश चला, न साम्राज्य ही रहा। इसके बाद ७०० वर्षों तक बहुत-सी पवित्र गाथाएँ सती माताओं की मिलती हैं।

●

जाको राखे साइयाँ

●

सन् १८५७ की वात है, जयरामवाटी के रामचन्द्र मुकर्जी की सुपुत्री शारदा का विवाह केवल ५ वर्ष की उम्र में पास के गाँव कामारपुकुर के एक २३ वर्ष के युवक रामकृष्ण के साथ हुआ। उन दिनों कुलीन ब्राह्मणों में इस प्रकार के वेमेल विवाह आमतौर पर होते थे।

संवंधी दोनों गरीव थे, इसलिए विवाह में खास धूम-धाम नहीं हुई, फिर भी रामकृष्ण की माता चंद्रादेवी और वड़े भाई रामकुमार ने थोड़ा-वहुत कर्ज लेकर सारे गाँव के लोगों को वहूभात में निमंत्रित किया। वालिका वहू थोड़े दिन ससुराल रहकर वापस पीहर चली आयी।

उधर रामकृष्ण कामारपुकुर से कलकत्ते चला आया। वहाँ रानी रासमनी के दक्षिणेश्वर के काली मंदिर का वह पुजारी हो गया।

१७ वर्ष का लंवा समय वीत गया। अव वालिका शारदा २२ वर्ष की पूर्ण यौवना सुन्दरी हो गयी थी। इस बीच में कई बार सास के पास कामारपुकुर रह आयी, दो वार थोड़े दिनों के लिए पति के पास दक्षिणेश्वर भी हो आयी थी, परंतु अधिकांशतः जयरामवाटी में ही रही।

इधर कलकत्ते में रामकृष्ण को काली की पूजा करते समय समाधि आने लगी। कभी-कभी वे जोर-जोर से हँसने, रोने और नाचने लग जाते।

यह खवर वढ़-चढ़कर जयरामवाटी पहुँची। गँवई-गाँव के लोगों को एक-दूसरे की चर्चा करने में वड़ा रस मिलता है। गाँव की औरतें शारदा की माँ के पास आकर कहतीं कि "शारदा बेटी को परमेश्वर ने इतना सारा रूप और गुण दिया, परंतु दुर्भाग्य से पति पगला मिला। वहू, हमने तो विवाह के समय भी कुछ ऐसा ही सुना था, परंतु तुम बुरा न मान जाओ इसलिए चुप रही।"

शारदा मन में जानती थी कि उसका पति पगला नहीं, वल्कि एक पहुँचा हुआ संत है, परंतु वहस में नहीं पड़कर मन में दुःखी होकर रह जाती। शोक और दुःख से वह वीमार रहने लगी।

एक दिन एक यात्री-दल गंगा-स्नान के लिए कलकत्ते जा रहा था। शारदा ने अपने माता-पिता से अनुनय-विनय करके उनके साथ दक्षिणेश्वर जाने की तैयारी कर ली।

६० मील के कीचड़ और काँटों से भरे रास्ते की पैदल कठिन यात्रा। गाँव से २० मील की दूरी पर तेलोभेलो नामक एक भयानक जंगल था, जहाँ एक सेर अन्न या एक कपड़े के लिए वागदी डाकू मनुष्य की जान ले लेते थे, परंतु इन सब बातों की उसने कुछ भी परवाह नहीं की।

शाम होने के पहले वे तारकेश्वर पहुँच जाना चाहते थे। रास्ते में ही वह जंगल था, इसलिए जल्दी-जल्दी चल रहे थे। शारदा बीमारी से उठी थी, कमजोर थी, इसलिए उनका साथ नहीं दे पा रही थी। दुर्भाग्य से पैर में मोच भी आ गयी।

रात होने में केवल दो घड़ी बाकी थी और अभी ८-१० मील का रास्ता तय करना था। शारदा ने कहा—"मेरे लिए आप सब अपनी जान जोखिम में न डालें। आप तारकेश्वर के मन्दिर में जाकर ठहरें, मैं धीरे-धीरे पहुँच जाऊँगी।"

थोड़ी-सी ऊहापोह के बाद डाकुओं के डर के कारण वे उस घनघोर जंगल में उसे अकेली छोड़कर चले गये।

जब वह तेलोभेलो वन में पहुँची तो रात हो गई थी। घनघोर वर्षा होने लगी। एक वृक्ष के नीचे बैठी वह दुखी होकर सोचने लगी कि इस जीवन में अब शायद ही दक्षिणेश्वर पहुँचकर पति के दर्शन कर पाऊँगी।

इतने में तीन-चार डाकुओं ने आकर उसे घेर लिया। कड़कती आवाज में उन्होंने पूछा—"तुम्हारे साथ वाले कहाँ गये?"

उसने सारी बातें सच-सच बता दीं और अपने पास में जो थोड़ा-बहुत कपड़ा-पैसा था वह उनके सामने रख दिया।

इस बीच डाकुओं ने मशाल जला ली थी। देखा एक अत्यंत रूपसी युवती सर्दी अथवा भय से काँप रही है।

उनके सरदार ने पूछा—"तुम कौन हो, कहाँ से आयी हो और कहाँ जा रही हो?"

युवती इस बीच आश्वस्त हो गई और न जाने क्यों उसका डर भी कम हो गया। हँसती हुई बड़े मधुर स्वर में वह बोली—"पिताजी, क्या आपने मुझे पहिचाना नहीं? मैं आपकी बेटी शारदा हूँ, जमाई दक्षिणेश्वर के काली-मंदिर में पुजारी हैं। उनके पास जा रही हूँ।"

अचानक डाकू सरदार के चेहरे का भाव बदल गया, कहा—"बेटी, शायद तुम बीमार और थकी हुई हो। पहले मेरे साथ घर चलो, कपड़ा बदल कर थोड़ा आराम कर लो।"

घर आकर पत्नी से कहने लगा—"ईश्वर ने हमें आज तक संतान नहीं दी पर आज अपने आप अन्नपूर्णा-सी सुन्दर बेटी भेज दी है। थकी-हारी है, जल्दी से इसे सूखे कपड़े पहिनाकर इसके भोजन की व्यवस्था करो। वाग्दी पत्नी कहने लगी—"बेटी,

हमलोग नीच जाति के हैं, शायद तुम हमारे हाथ का बना खाना खाओगी नहीं। मैं पास के गाँव से ब्राह्मणी दादी को तुम्हारे भोजन बनाने के लिए बुला लाती हूँ।"

"माँ, तुम्हारे जवाईं कैवर्त (एक शूद्र जाति) रानी के मंदिर के पुजारी हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर के घर में सब बराबर हैं। फिर मैं तो तुम्हारी बेटी हूँ, तब भला मुझे क्या परहेज हो सकता है?"

इस बीच में पास-पड़ोस के ५–६ स्त्री-पुरुष आ गये थे। वैसे वे सब खूँखार डाकू थे, परंतु वे आज अपने सरदार की दत्तक पुत्री की सेवा में स्नेह और प्यार से लगे हुए थे।

खा-पीकर थोड़ा आराम करने के बाद शारदा ने कहा—"बाबा, अगर मैं यात्रीदल के साथ कलकत्ते नहीं पहुँचूँगी तो आपके जवाईं को बहुत चिंता हो जायगी, इसलिए आप मुझे अभी तारकेश्वर पहुँचा दें। मैं आपको वचन देती हूँ कि आते समय आपके पास ठहरकर फिर गाँव जाऊँगी।"

चार मजबूत तेज चलने वाले कहारों की पालकी मँगायी गई। विदा के समय बेटी को उन गरीबों के पास उपहार देने को तो क्या था, फिर भी थोड़ी-सी हरी मटर, चिवड़ा और बताशे सगुन के तौर पर साथ में दिये। रक्षा के लिए स्वयं सरदार एवं दो साथी पालकी के साथ चले।

मुँह अँधेरे वे तारकेश्वर के पास पहुँच गये। सरदार कहने लगा—"बेटी, अब तुम्हें मंदिर तक अकेली जाना पड़ेगा। मेरे जिंदा या मुर्दा पकड़ने पर सरकार ने पाँच सौ रुपये इनाम रख छोड़ा है।"

विदा के समय वह दुर्दांत बाग्दी डाकू बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोते हुए कहने लगा—"भगवान ने हमारे पापों को क्षमा करके ढलती उम्र में तुम सरीखी बेटी और पुण्यात्मा जँवाईं दे दिया है। अब हम चाहे भूखे मर जायँ, पर न तो किसी को सतायेंगे, न डाका डालेंगे।"

शारदा जब तारकेश्वर के मंदिर में पहुँची तब साथ के लोग जाने की तैयारी कर रहे थे। उन्हें विश्वास ही नहीं था कि वह सकुशल वापस आ जायेगी। अतः उसे देख कर सब आश्चर्यचकित हो गये। वह यह नहीं समझ सके कि तेलोभेलो के दुर्दांत डाकुओं ने उसे गहने-कपड़े सहित राजी-खुशी कैसे छोड़ दिया।

दक्षिणेश्वर आकर शारदा ने देखा कि उसके पति को इस बीच साधारण पुजारी की जगह परमहंस रामकृष्ण माना जाने लगा है। कलकत्ते के और बाहर से भी प्रति दिन हजारों व्यक्ति दर्शन और प्रवचन सुनने के लिए उन्हें घेरे रहते हैं। वह केवल २२ वर्ष की युवती थी, परंतु वह भी सबके निकट शारदा माँ हो गयी।

जब दक्षिणेश्वर से वापस वह जयरामवाटी के लिए रवाना हुई तब अपने वादे के अनुसार वह तेलो भेलो में ठहरी। उसने देखा वहाँ का वातावरण बदल गया है, डाका डालना छोड़कर लोग थोड़ी-बहुत खेती-बारी करने लगे हैं या छोटा-मोटा धंधा कर रहे हैं। अपने साथ में वह परमहंस की एक तस्वीर ले आयी थी। दूसरे दिन बड़े धूम-धाम से उसे वहाँ के काली मन्दिर में स्थापित किया गया।

आज वहाँ जंगल साफ होकर खेती होने लगी है। बाग्दी डाकुओं का काली-मंदिर उस स्थान पर आज भी है और परमहंस श्री रामकृष्ण की वह तस्वीर वहाँ पर स्थापित है।

●

चौधरीजी का मायरा

हिंदुओं में वहन के लड़के या लड़की के विवाह पर भाई भात (मायरा) लेकर वहन के यहाँ जाया जाता है। यह प्रथा हजारों वर्षों से चली आ रही है। अगर भाई नहीं होता तो पीहर के पड़ोसी गाँव के किसी व्यक्ति अथवा ब्राह्मण द्वारा चुनरी का नेग किया जाता है। भात के नेगचार बिना विवाह के आगे के कार्यक्रम रुके रहते हैं।

तेरहवीं शताब्दी की घटना है। जूनागढ़ के पास अंजार नाम का एक कस्बा है। यहाँ नरसी मेहता की पुत्री नान्हीवाई की ससुराल थी। नान्हीवाई की पुत्री का विवाह था। परंपरा के अनुसार जूनागढ़ से मेहताजी भात लेकर आनेवाले थे। परंतु इसके लिए उनके पास साधन नहीं थे। भगवद्भक्त थे ही, जो कुछ था भी साधु-संतों की सेवा-आवभगत में खर्च कर दिया और उन्हीं की मंडली में रहकर हरिभजन में मग्न रहते। परिवार के लोगों तथा मित्रों को अंजार साथ चलने के लिए उन्होंने आमंत्रित किया। किंतु भला उनके साथ जाकर कौन अपनी हँसी कराता ? आखिर वे अकेले ही एक टूटी-सी वैलगाड़ी पर अंजार की ओर चल पड़े। साथ में साधु-मंडली भी हरि-कीर्तन करती जा रही थी।

उधर नान्ही वाई के ससुराल वाले मेहताजी के स्वभाव से परिचित थे। उनकी माली हालत भी उनसे छिपी न थी। वाई को ताने पर ताने देते कि मेहताजी बहुत वड़ा भात लेकर आ रहे हैं। वाई के पास चुपचाप सहने के अलावा और कोई उपाय नहीं था। वह उदास रहने लगी और पिता के आने की राह देखती रहती।

इसी बीच एक दिन लोगों ने जूनागढ़ की तरफ से गाजे-बाजे और रथों की घंटियों की आवाज आती सुनी। उत्सुकतावश सभी जमा हुए। थोड़ी देर में सचमुच ही वेशकीमती साजोसामान लिये मेहताजी के मुनीम आ पहुँचे। अपना परिचय साँवरजी के नाम से दिया और बताया कि मेहताजी की ओर से भात का सामान लेकर आये हैं। वाई के लिए हीरे-मोती जड़े गहने, चुनरी, सास-ननद के लिए कीमती वस्त्र; यहाँ तक कि नौकर-चाकर के लिए सोने की कंठी और कड़े।

ऐसे अवसरों पर ससुरालवाले तरह-तरह की फरमायश में पीछे नहीं रहते। अनेक प्रकार की कीमती चीजों की माँग पेश कर नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं। परंतु मुनीमजी तो मानो सारी परिस्थितियों के लिए पहले ही से तैयारी के साथ आये थे। सबकी फरमायशें पूरी कर दीं और वापस चले गये।

इसके वाद मेहताजी इकतारे पर राग केदारा में हरिभजन करते हुए बाई के ससुराल पहुँचे, साथ में साधुमंडली भी थी। समधियाने वालों ने ससम्मान उनका स्वागत किया। बताया कि मुनीमजी के हाथों आपने जो सामान भेजे थे, वे मिल गये। पर वे चले भी गये। कह रहे थे, जरूरी काम से वापस जाना है।

दूसरी घटना है सोलहवीं शताब्दी की। नारनौल के एक सेठ की विधवा के पुत्र की सगाई लड़कीवाले वहाना वनाकर छोड़ना चाहते थे। सेठ अपने जमाने में काफी धनी और खुशहाल थे। मृत्यु के बाद उनका परिवार गरीब हो गया था। फिर भी संवंध और व्यवहार पहले जैसा अब भी था।

संयोग से सेठानी के मुँहवोले भाई आगरा से लाहौर जाते हुए उनके यहाँ ठहरे। वे वादशाह अकवर के मालमंत्री थे।

वहन ने भाई की आवभगत की। टोडरमल ने कन्यापक्षवालों की सगाई तोड़ने की वात सुनी तो कहा—"चिन्ता न करो वहन, सारी तैयारी रखना। विवाह के अवसर पर भात लेकर मैं आऊँगा।"

वे आये और ऐसा भात लाये कि ऐतिहासिक घटना हो गयी। आज भी वधू की अगवानी के समय 'जीत्योजी टोडरमल वीर' का गीत इस मांगलिक अवसर पर गाया जाता है।

तीसरी घटना है, १९वी शताब्दी के पाँचवें दशक की। दिल्ली के उत्तर में मेरठ, हापुड, मुक्तेश्वर, सहारनपुर कस्वों में उन दिनों गुज्जर पठानों की जागीरदारियाँ थीं। यद्यपि मालगुजारी और उसकी वसूली का अधिकार अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी को हो गया था; फिर भी इन जागीरदारों में से वहुतों के संवंध रसूक, कमोवेश दिल्ली के वादशाह से कायम थे। सैकड़ों साल से चले आये आपसी ताल्लुकात वाइज्जत वरक़रार थे।

अंग्रेज सिक्खों से युद्ध में उलझे थे। मुगल-शासन पहले ही से शिथिल था। हुकूमत चलती थी कम्पनी सरकार की, मगर युद्ध के कारण वे शासन को सुव्यवस्थित नहीं कर पा रहे थे। इस वजह से इन जिलों के ताल्लुक और जागीरों में चोरी, डकैती और राहजनी का जोर था। यहाँ तक कि कुछ वड़े जागीरदार खुद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से डकैतियाँ डलवाते या इन्हें संरक्षण देकर लूट के माल में हिस्सा लिया करते।

मुक्तेश्वर के जागीरदार थे गुज्जर चौधरी रूपरामजी। हालाँकि उनकी सालाना आमदनी डेढ़-दो लाख ही थी; परंतु सस्ती का जमाना था; रुपये का ढाई-तीन मन गल्ला मिलता था। दस सेर तेल और तीन सेर घी। अच्छी नस्ल के घोड़ें की कीमत थी, वीस-पचीस रुपये। चौधरी का रोवदाव था, ठाठ-वाट से रहते थे। दरवाजे पर दो हाथी झूमते, अस्तवल में २५ घोड़े, २० रथ और पछाहीं वैलों की कई जोड़ियाँ। सैकड़ों की तायदाद में निजी सिपाही भी थे।

उनकी जागीर की ख़िराज़ पिछले पचास वर्षों से शाही हुक्मनामे के मुताविक आला शाहजादे के पान-खर्च के लिए लगी हुई थी। अव हालाँकि वे बूढ़े होकर बादशाह हो गये थे और कम्पनी के साथ हुई शर्तों के मुताबिक ख़िराज का हक़ उनका न रहा, वे महज़ पेंशन के हक़दार रहे; फिर भी चौधरी रूपाराम प्रतिवर्ष ख़िराज़ की रकम लेकर गाजे-बाजे के साथ मुक्तेश्वर से बादशाह सलामत की खिदमत में नज़र करने खुद अपने साथ ले जाते। साथ में हाथी, घोड़े, रथ, तम्बू-कनात और हथियारबंद सिपाही रहते। चालीस मील की सफ़र में तीन दिन लग जाते। धर्मशालाएँ और सरायें कम थीं। जहाँ भी ठहरते, तम्बू और छोलदारियाँ लग जातीं।

हर साल की तरह वे दिल्ली जा रहे थे। फसल अच्छी हुई थी। किसान और रियाया सुखी थी। चौधरी पूरे हुजूम के साथ दिल्ली के लिए रवाना हुए।

दूसरे दिन का मुकाम शाहदरा के लिए तय था। तीसरे दिन की सुबह तक दिल्ली पहुँचने की ख़बर भेज दी गयी थी।

संयोग की बात है। जिस दिन चौधरीजी का पड़ाव शाहदरा में था, उसी दिन वहाँ के छोटू मेहतर की पुत्री की शादी भी थी। हापुड़ के मतई आनेवाले थे। बिना भात के आगे के नेगचार रुके हुए थे। जनवासे में सारे बाराती बुलावे की बाट जोह रहे थे।

शाम का झुटपुटा हो गया। मतई अब तक आये नहीं। छोटू और उसकी पत्नी की चिंता बढ़ती जा रही थी। अगर भात नहीं आया तो फिर क्या हाल होगा। इज़्ज़त मिट्टी में मिल जायगी। क्या मुँह दिखायेंगे? इसी उधेड़बुन में थे कि हापुड़ की ओर से बाजे की आवाज आती सी सुनाई पड़ी। छोटू की जान में जान आयी। जल्दी-जल्दी तैयारी कर वे सब अगवानी के लिए आगे बढ़े। उतावली में वे एक-दूसरे को पहिचान न सके। छोटू उन्हें सीधा अपने घर तक ले आया।

चौधरी साहब ने पूछा, "हमारे हरकारे और तम्बू किधर हैं? तुम हमें कहाँ ले आये?" अब तो छोटू को काटो तो खून नहीं। उसके होश गुम हो गये। डर के मारे काँपने लगा और जमीन पर लोटकर कहने लगा, "बापजी, गजब हो गया। मेरी लड़की की शादी है, बारात आ चुकी है; हापुड़ से मतई आनेवाले थे। मैंने समझा........ परेशानी से मेरा सिर फिरा था। ग़लती से आपको पहचान न सका। उन्हें समझकर आपको यहाँ ले आया। आपकी परजा हूँ, मालिक! अनजान में गुनाह हो गया, माफ़ करें।" उसकी घिग्घी बँधी थी।

चौधरी को सफ़र की थकान थी। एक बार तो गुस्सा आया, त्यौरियाँ चढ़ आयीं। फिर भी चुप रहे, सोचने लगे—बिचारे का क्या कसूर। भात का समय बीत रहा था, बारात शायद नाराज होकर लौट जाती। ऐसे में हर बेटी का बाप होश खो देगा। उन्होंने यह कहते हुए अपनी ख़ामोशी तोड़ी—"छोटू, हमने सुना कि रास्ते में

कंजरों ने हापुड़ से आये कुछ लोगों को लूटा है, हो सकता है, कहीं मतई और उनके आदमियों पर मुसीवत पड़ी हो। खैर तुम फ़िक्र मत करो। तुम्हारी वेटी, सो मेरी वेटी। सारे नेगचार की तैयारी करो। जनवासे में ख़बर भेज दो कि मतई भात ले आये, वे वारात लेकर आ जायें।"

वादशाह की नज़र के लिए लायी हुई सारी क़ीमती चीज़ें भात में दे दी गयीं। छोटू की पत्नी को जब चौधरीजी चुनरी ओढ़ाने लगे तो उस ग़रीव की आँखों से आँसू उमड़ पड़े।

छोटू की वेटी के हाथ में पचीस अशर्फ़ियाँ रखते हुए चौधरीजी ने सुखी-सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दिया। दूल्हे को सोने के कड़े, पाँचों कपड़े और एक सोरठी घोड़ी दी। वर के पिता को मिर्जई और चार अशर्फ़ियाँ। प्रत्येक वाराती को चाँदी की एक-एक कटोरी। सारे कस्वे में चौधरी के भात की चर्चा वढ़-चढ़कर फैल गयी। कोई निंदा करता तो कोई प्रशंसा।

दूसरे दिन चौधरी दिल्ली पहुँचे। वादशाह सलामत की तरफ़ से सारा इंतज़ाम था। अगवानी के लिए शहर का नाज़िम खुद हाज़िर था।

दोपहर के वक्त जब दीवान-ए-खास में उनके नाम की तलवी हुई तो खिराज़ की रक़म की वावत चौधरीजी ने अर्ज किया कि "हज़ूर, हमेशा की तरह गाँव से पूरी रक़म लेकर ही चला, मगर सफ़र में कुछ ऐसे हादसों का इत्तफ़ाक वना कि पास में कुछ भी न बचा। खैर, हम कुछ दिन फिलहाल यहाँ रुकेंगे और इस दरम्यान अपने इलाके से रक़म मँगाकर आपकी ख़िदमत में पेश करने का फ़ख्र हासिल करेंगे।"

वादशाह ने मुस्कुरा कर कहा कि "इलाके के शातिर चोर-डाकू आपका रुतवा मानते हैं, लिहाज़ा ताज्जुव है डकैती का यह वाकया आपके साथ कैसे मुमकिन हुआ।"

चौधरीजी ने सारी घटना सच-सच वता दी। वादशाह खुश होकर हँसने लगे। यद्यपि अंतिम मुग़ल सम्राट वहादुरशाह केवल नाममात्र के वादशाह रह गये थे; किंतु वे अपने वाप-दादों से कहीं ज्यादा दरियादिल थे। स्वयं भावुक थे, शायर भी। कहने लगे—"चौधरी रूपराम, आपने जो कुछ भी किया उससे मा-वदौलत वेहद खुश हैं। हम नाज़िम को हुक्म फरमाते हैं कि खिराज़ की पूरी रकम वसूली के बतौर खजाने की वहियों में जमा लिख दी जाय। छोटू मेहतर की वेटी को दिया गया भात हमारी तरफ़ से समझा जाय और मतई—हम और तुम दोनों।"

•

रामेश्वर टाँटिया

जन्म, २६ जनवरी १९१० ई०। पन्द्रह वर्ष की अल्पावस्था में व्यावसायिक जीवन का प्रारम्भ, सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कम्पनी जे० थामस के साधारण कर्मचारी की हैसियत से। बत्तीस वर्ष बाद १९५७ में संसद सदस्य चुने जाने पर उक्त कम्पनी से पृथक हुए। इस समय तक निजी उद्योग, कलकत्ता, बम्बई तथा असम में स्थापित हो चुके हैं।

सार्वजनिक जीवन

संस्कृति, समाज एवं राष्ट्र के प्रति सदैव रुचि रही। सामाजिक आन्दोलनों में भाग लेते रहे। सन् १९५७ एवं १९६२ के चुनाव में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। दस वर्ष कोलम्बो, अवधि में आपने चार वर्ष तक कांग्रेस संसदीय पार्टी के कोषाध्यक्ष के पद पर कार्य किया। सन् १९५२ से १९५६ तक भारत की प्रसिद्ध सेवा संस्था मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के प्रधान मन्त्री रहे। सन् १९६८ में सरकार ने आपको उत्तरप्रदेश के अन्यतम वृहद उद्योग के प्रतिष्ठित संस्थान ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन के संचालनका दायित्व सौंपा, सन् १९७२ तक आप इसके प्रबन्ध निदेशक रहे। जनवरी १९७२ में उत्तारप्रदेश की प्राचीनतम व्यावसायिक संस्था अपर इंडिया चेम्बर के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसके बाद आपने सार्वजनिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर लिया।

विशेष रुचि

भारत के प्राय: समस्त सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों का भ्रमण किया। सन् १९५७, १९६१ एवं १९६४ में विदेश यात्राएं की। विदेश की इन यात्रा संस्मरणों का वृहद संकलन 'विश्वयात्रा के संस्मरण' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। वर्तमान पता: ४ शरत चटर्जी एवेन्यु, कलकत्ता–७०००२९

प्रमुख कथा कृतियाँ

उपन्यास

लोकऋण	विवेकी राय	१५.००
चौदह फेरे	शिवानी	१८.००
मंगला	अनन्त गोपाल शेवड़े	६.००
व्यतधाने	शान्तिकुमारी वाजपेयी	२०.००

कहानी

भुवनेश्वर की रचनाएँ	डा० शुकदेव सिंह	१०.००
कई चेहरों के बाद	डा० बच्चन सिंह	४.००
हारुँगी नहीं	द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'	५.००
कला का अनुवाद	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी